http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

नियमसार प्रवचन

भाग 2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

नियमसार प्रवचन

द्वितीय भाग

प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उ० प्र०)

[प्रथम संस्करण 1000]   १९६८   [मूल्य ५० पैसे]

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

—:०:—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नियमसार प्रवचन द्वितीय भाग

[प्रवक्ता:— अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

(जीवके स्वरूपका बंधाधिकारमें वर्णन करके अब इस अधिकारमें अजीवका वर्णन किया जा रहा है।)

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो ॥२०॥

अजीवोंमें पुद्गलका प्रथम वर्णन— अजीव ५ प्रकारके होते हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन पांचों द्रव्योंमें से पुद्गलद्रव्य स्पष्ट है और व्यावहारिक प्रयोगमें अधिकतया आता है। इस कारण उन अजीवोंके भेदमें सर्वप्रथम पुद्गलद्रव्यका वर्णन किया जाता है। पुद्गलद्रव्य दो प्रकारका है— एक अणु और दूसरा स्कंध। यद्यपि पुद्गलके ये दो भेद नहीं हैं—परमाणु और स्कंध। स्कंध तो अनेक पुद्गलोंके पिण्डका नाम है, फिर भी स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल इस प्रकार दो भेदके आधार से परमाणु और स्कंध— ये दो भेद पुद्गल के मान लिए जाते हैं।

स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल— स्वभावपुद्गल वह है जो केवल पुद्गल है, एक है। अद्वितीय अद्वैतपुद्गलको स्वभावपुद्गल कहते हैं और जो अद्वैत नहीं है, वरन् निमित्त या नैमित्तिकके संयोगरूप है, वह विभावपुद्गल है। विभावपुद्गल स्कंधका नाम है, स्कंधावस्था पुद्गलके बंधनरूप अवस्था है, एक विशिष्ट संयोगकी अवस्था है। स्कंध मटकेमें भरे हुए चनोंकी तरह परमाणुवोंका पुञ्ज नहीं है। मटकेमें चने बंधे हुए नहीं हैं, किन्तु स्कंधमें पुद्गलपरमाणु बधे हुए हैं और ऐसे बंधे हुए हैं कि शुद्ध पुद्गलका कार्य नजर नहीं आता। स्कंधका काम होता है, इसलिए इस विभावावस्थामें अर्थात् अनेक द्रव्योंके संयोगरूपावस्थामें हुए स्कंधोंको भी पुद्गल कहते हैं। स्वभावपुद्गल नाम है परमाणुका और विभावपुद्गल नाम है स्कंधोंका।

स्वभावपुद्गलके प्रकार— स्वभावपुद्गल भी दो प्रकारके हैं—एक कार्यपरमाणु और दूसरा कारणपरमाणु। बात वही एक है, कोई भिन्न-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भिन्न जगहमें ये दोनों पाए नहीं जाते कि कारणपरमाणु कोई और होता होगा और कार्यपरमाणु कोई और होता होगा। उसी प्रकार परमाणुमें कारणताकी मुख्यतासे कारणपरमाणुका व्यपदेश है तथा जो कुछ होगा उसमें परिणमन भी है। एक ही परमाणु रहकर उस परमाणुके स्वरूपका आश्रय करके जो होगा, वह कार्यपरमाणु है। जो परमाणुका सहजस्वरूप है, उसका नाम है कारणपरमाणु और उस परमाणुका जो व्यक्तरूप है, जिसमें पांचों रसोंमें से एक रस है, पांच वर्णोंमें से एक वर्ण है, दो गंधोंमें से एक गंध है और चार स्पर्शोंमें से दो स्पर्श हैं—ऐसे कार्यरूप परिणत परमाणु कार्यपरमाणु कहलाते हैं। परमाणुसे अपना कोई वास्ता नहीं चल रहा है, इसलिए पुद्‌गलद्रव्यका स्वरूप भी जीवकी तरह सूक्ष्म है और जैसे जीव अनेक चमत्कारों वाला है, इसी तरह यह पुद्‌गलपरमाणु भी अनेक चमत्कारों वाला है।

जीव और पुद्‌गलका चमत्कार— जीवका चमत्कार चेतन जातिका है और पुद्‌गलका चमत्कार पुद्‌गलजातिका है। ये कार्यपरमाणु एक समयमें १४ राजू तक गति कर लेते हैं और जीव भी एक समयमें १४ राजू तक गति कर लेता है। लोकके नीचेसे निगोदजीव मरा और सिद्धलोकमें निगोद बना तो वह भी गमन कर लेगा। परमाणु जैसे-जैसे विविक्त होते हैं, जैसे-जैसे वे न्यारे होते हैं तैसे ही तैसे उनमें शक्ति और चमत्कार प्रबल होता जाता है। जिस प्रकार जीव कर्मोंमें, शरीरमें, बड़े-बड़े शरीरों में, मच्छ जैसी देहोंमें बड़े विस्तार और पिण्डरूपसे बन जाता है, वैसे ही उसका चमत्कार कम होता है और जैसे ही शुद्ध हो जाता है, कर्म और शरीरके पिंडोंसे विविक्त होता है, हलका होता है, चमत्कार बढ़ता है और जब जीव बिल्कुल अकेला हो जाता है तो उसका चमत्कार सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। इसी तरह ये परमाणु जैसे-जैसे न्यारे होते हैं, अकेले रहते हैं, तैसे ही तैसे चमत्कार भी बढ़ता है। लोकमें प्रयोगके लिए भी अणुकी शक्ति अधिक बतायी है और स्कंधोंकी शक्ति कम बतायी है। अणुशक्ति रेल चलना, कारखाने चलना और बड़े-बड़े विघात कर सकना आदि सब बातें आजके आविष्कारमें सिद्ध की जा रही हैं। यद्यपि वे अणु नहीं हैं, किंतु स्कंधोंकी अपेक्षा वह सब अणुशक्तियोंका संचय है।

स्कंधोंके प्रकारोंका निर्देश— स्वभावपुद्‌गल दो तरहके हैं—कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु। विभावपुद्‌गल ६ प्रकारके हैं, जिनको आगेकी गाथावोंमें बताया जाएगा, उन छहोंके नाम ये हैं—स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म। इनका विवरण और उदाहरण सब आगेकी गाथावोंमें प्रकट होगा। इनको संक्षेपमें यों समझ लीजिए कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे पृथ्वी है वह स्थूल-स्थूल है—हाथमें ले लो, फेंक दो, रख दो, अतः यह स्थूल-स्थूल है। जलको हम ईंट-पत्थरकी भांति रख नहीं सकते, यह बिखर जाता है, ढेला नहीं बन सकता, किंतु पकड़में आता है, इस कारण जल स्थूल है। जैसे स्थूलसूक्ष्म छाया है, यह पृथ्वीकी तरह धरी भी नहीं जा सकती कि इस छायाको संदूकमें भरकर रखलें और जलकी तरह पकड़ी भी नहीं जा सकती। छायाको कोई पकड़ नहीं सकता है, किन्तु दिखती जरूर है, यह स्थूलसूक्ष्म है। रूप, रस, गंध, स्पर्श—ये विषय सूक्ष्मस्थूल हैं। देखो, ये खूब समझमें आ रहे हैं, पर इन्हें देख भी नहीं सकते, छाया की तरह इनका मोटारूप नहीं है और कर्मोंकी योग्य पुद्गलवर्गणाएँ हैं, ये सूक्ष्म हैं। कर्मवर्गणाके योग्य पुद्गल ये अतिसूक्ष्म हैं। यह सब वर्णन आगेकी गाथावोंमें आएगा, यहां तो परमाणुका स्वरूप विशेषरूपसे समझो।

लोकयात्राका साधन— अणुमें गलनस्वभाव है। गलनेसे अणु पैदा होते हैं, बिखरनेसे, अलग होनेसे अणु बनते हैं और पूर जानेसे, संचय हो जानेसे स्कंध नाम पड़ता है। यों पुद्गलके इस क्रमसे भेद कहे गए हैं कि मूलमें वे दो प्रकारके हैं—स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभाव-पुद्गल नाम है परमाणुका और विभावपुद्गल नाम है स्कंधका। स्वभाव-पुद्गल दो प्रकारके हैं—कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु और विभाव-पुद्गल ६ प्रकारके कहे गए हैं। इन पुद्गलपदार्थोंके बिना लोकयात्रा नहीं बन सकती। शायद आप लोकयात्रा समझ गए होंगे। सिखरजी, गिर-नारजी आदिकी यात्रा इन पैसे पुद्गलों बिना न होती होगी। यही ध्यानमें होगा तो यह भी थोड़ा-थोड़ा लगा लो, पर यहां तो लोकयात्रासे मतलब है कि यह संसारीजीव संसारमें डोलता रहता है। इतनी लम्बी लोक-यात्राएँ पुद्गलके बिना नहीं हो सकती हैं।

परेशानीकी प्रयोजिका लोकयात्रा— भैया! पुद्गलद्रव्यका जानना भी अतिआवश्यक है, जिसके सम्बन्धसे यह जीव भटक रहा है। जिससे हमें छूटना है, उस पुद्गलकी भी तो बात देखो— कितनी लम्बी-लम्बी यह जीव यात्रा करता है? मरनेके बाद तो बड़ी तेज यात्रा होती है। एक-एक समयमें ७-७, १०-१०, १४-१४ राजू तक चला जाए—ऐसी लम्बी लोक-यात्राएँ इस जीवकी पुद्गलद्रव्यके बिना नहीं होतीं। यद्यपि एक समयमें मुक्तजीव भी ७ राजू तक यात्रा करता है, किंतु उसे यात्रा नहीं कहते हैं। यात्रा तो वह है जहां यह जीव भटकता है, जिसके बाद फिर वापिस डोलता है, उसीका नाम यात्रा है। संसारीजीव कहींसे कहीं भी पहुंचे, उसे फिर भी भटकना है। देखो तो, कहां-कहां भटककर आज मनुष्यभवमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पैदा हो गए ? यहां जो कुछ मिला, उसीमें मग्न हो गए। है कुछ नहीं और मग्नता इतनी विकट है कि हैरानी हो रही है, छूट नहीं सकते। मनमें दृढ़ता आए तो छूटनेमें भी विलम्ब नहीं है, पर दृढ़ता नहीं ला सकते और है कुछ नहीं। कहींके पटके आज यहां हैं, यहांसे गुजरकर कल कहीं पहुंच गए, कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह लोकयात्रा इस जीव को परेशान कर देती है।

परेशानी शब्दका भाव— परेशान शब्दका अर्थ क्या है ? परेशान शब्द है तो उर्दू का, पर इसका संस्कृतमें अर्थ होता है 'पर है ईशान जिसका'। उसे कहते हैं परेशान। परेशानका जो परिणाम है उसका नाम परेशानी है। ईशान मायने मालिक, परपदार्थ है मालिक जिसका। उस जीवको कहते हैं परेशान। जिसने अपनेको परके लिए सौंप रखा है, मैं तो इसका हूं— ऐसा जिसने भाव बनाया है, उसका नाम है परेशान अर्थात् परतन्त्र और परेशानका परिणाम है परेशानी अर्थात् परतन्त्रता। यहां इस जीवको परेशानी है पुद्गलके सम्बन्धसे। इसमें भी मूल अपराध अपना है। पुद्गलका क्या अपराध है ? वह तो अचेतन है, उसमें तो कोई आशय ही नहीं है। उसने क्या अपराध किया ? अपराध है यहां खुदका कि जो अपने सहजज्ञानस्वरूपसे चिगकर अज्ञानभावमें रत हो रहे हैं। अज्ञानभाव है विषय और कषायके परिणाम। उन विषयकषायोंमें रति होनेके कारण यह जीव अपराधी है, जिससे यह दुःखी है, परेशान है।

[नोट:-- यहां इस प्रसंगसे आगेकी कुछ हस्तलिपि गुम हो गई है। अतः इसका हमें अफसोस है।]

—प्रकाशक

कर्मकी भिन्नता व निमित्तनैमित्तिकता-- इन कर्मोंको टालनेके लिए जीव समर्थ नहीं है ऐसा लोग कहते हैं। यह बात पूर्णरूपसे ठीक है, कर्म तो परद्रव्य है। आत्मा कैसे टलेगा ? अपने विभावोंको उपयोगसे हटाकर शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें पहुंचे—ऐसी बात तो की जा सकती है। कर्म अपने आप टल जायेंगे, मिट जायेंगे। उनको मिटानेका लक्ष्य बनाकर कोई यत्न करे तो मिटता नहीं है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी प्रधानता रखकर विनती और स्तुतियोंमें अनेक बातें पायी जाती हैं, वे असत्य नहीं हैं, किंतु उनका मर्म जानना चाहिए। जैसे कहते हैं कि 'कर्ममहारिपु जोर, एक न काम करे जी' कितना भी कहो एक भी प्रार्थना नहीं सुनते—ऐसे महारिपु ये कर्म हैं। सो मनमाना देख लो, किसीसे नहीं डरते हैं। अरे !

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे बेचारे अचेतन खुद अपनी परिणतिसे विभावरूप परिणमने वाले ईमानदार हैं। कभी धोखा नहीं देते, जैसे हैं तैसे ही सामने हैं। उन कर्मोंका निमित्त पाकर यह जीव दुःखी होता है। इस सम्बन्धको लेकर उस ओरसे यह बात कही जाती है और फिर प्रभुसे हम विनती करते हैं कि 'दुष्टन देउ निकारि साधुनको रख लीजै' अर्थात् इन दुष्टकर्मोंको हे भगवान! निकाल दो और जो हम साधु हैं, बड़े अच्छे हैं, हमें रख लीजिए अथवा हममें जो गुण भरे हैं, उनको तो ठीक कर दो और इन कर्मोंको निकाल दो। यह कर्मोंकी प्रधानताका स्तवन है।

स्तवनपद्धतियां— कभी तो निमित्तोंकी प्रधानताका स्तवन होता है। जैसे मानों भगवानके ऊपर दया करके कहते हो कि हे भगवान्! तुम अनगिनते जीवोंको तारते-तारते थक गए हो, इसलिए तारना तो हमें भी, पर धीरे-धीरे तारना। भगवान पर दया कर रहे हैं। थके-थकाये भगवानको सता नहीं रहे हैं कि हमें जल्दी-जल्दी तारो, बल्कि कह रहे हैं कि हमें धीरे धीरे तारो। बड़ी दयाकी दृष्टि जाहिर करके भगवानकी स्तुति जाहिर की जा रही है और कहीं कुछ उनके उलहानेकी दृष्टिसे उनकी स्तुति कर दी जाती है। हमें क्यों नहीं तारते भगवन? हमें क्या है? न तारो, पर बुराई तुम्हारी ही होगी कि ये कैसे तारनतरन हैं कि यह भक्त तो ऐसी निष्कपट भक्ति कर रहा है और भगवान कुछ विवेक भी नहीं करते। अतः कितने ही प्रकारोंसे स्तुतियां की जाती हैं।

कर्मपर अवशता— कर्मोंका सम्बन्ध बताकर प्रभुसे निवेदनरूप जो इस प्रकारकी स्तुतियां की जाती हैं, वे निमित्तकी प्रधानता रखकर की जाती हैं। ये हैं और जीवके साथ निमित्तनैमित्तिक बन्धनको लिए हुए हैं, पुद्गलस्कंध हैं, फिर भी ये परपदार्थ हैं, इन पर हमारा वस नहीं है। हमारा वस निजविभावों पर है, स्वभाव पर है। ये कर्म सूक्ष्मविभावपुद्गल हैं।

सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गल— अब सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गलकी बात सुनिए। हैं तो कार्माणवर्गणाएँ, जाति तो वही है, फिर भी उनमें अनन्तवर्गणाएँ ऐसी रहती हैं कि वे कर्मरूप बन ही नहीं पातीं, वे सूक्ष्मसूक्ष्मपुद्गलस्कंध कहे गए हैं। कर्म बननेके अयोग्य कार्माणवर्गणायें सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गल हैं।

अविवेक नाटय— यह जीव नाना प्रकारके देहोंमें बंध-बंधकर उस कालमें एक विभावपर्यायरूप बनकर इस लोकमें बड़ा नृत्य कर रहा है। अतः जीवके स्वरूपको देखो कि वह तो एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। जितना यह नृत्य हो रहा है, यह अविवेकका नृत्य है। इस अविवेकके नृत्यमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वर्णादिक पुद्गल नाचते हैं। ये पुद्गल ही अनेक प्रकारसे दिखाई देते हैं। जीव तो अनेक प्रकारका है नहीं। मूलमें जीव तो एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है और ये पुद्गलस्कंध नानारूप हैं। अतः जो एक ही आत्मतत्त्व है, वह तो जैसा है वहीं अवस्थित है। जिस दृष्टिको लेकर अपरिणामवाद ने यह बात जाहिर की है कि आत्मा एक है, सर्वत्रव्यापक है, उसकी छाया पाकर ये मन और शरीर सब जीवरूप पर्यायोंको रखते हैं।

स्याद्वाद व पक्षाग्रहसे सत्यता व असत्यता— जैनसिद्धान्तकी भाषामें आत्मस्वरूपको आत्मा मान लिया जाए तो वे सब बातें घटित हो जाती हैं। आत्मद्रव्य तो प्रतिव्यक्ति जुदा-जुदा है, उसका समस्त परिणमन जुदा-जुदा है, किन्तु उन सबका स्वरूप क्या जुदा जुदा है? स्वलक्षण और स्वभाव जो एक जीवका स्वरूप है, वही दूसरे जीवका भी स्वरूप है। केवल स्वरूपदृष्टिको ही लखा जाए तो वह एक है, किन्तु स्वरूपदृष्टिसे लखनेकी तो बात थी और लखने लगे प्रदेशवान्की दृष्टिसे तो वह कथन अब स्याद्वादसे मेल नहीं खाता है। जैसे अंधेको बताना तो है खीरका स्वाद, पर खीर जैसा सफेद बगुला होता है। अतः बगुलाकी जैसी चोंच हाथको बनाकर अंधेके आगे रख दे तो जैसे वह विडम्बना है, वैसे ही आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे जो विवरण है, वह व्यापक है, एक है, अपरिणामी है। सब सही बातें हैं, किन्तु उस विषयको स्वभावकी दृष्टिसे न तककर, बल्कि स्वभाववान् यह आत्मा है और आत्मपदार्थ है, प्रदेशवान् है, ऐसे धीरे-धीरे फैलकर, ऐसे तत्त्वकी ओर झुककर सर्वथा जब यह कहा जाने लगा कि आत्मा तो एक है, व्यापक है, भिन्न-भिन्न तो है हो नहीं। जीवके यह भ्रम हो गया है कि मैं अमुक हूं, अमुक हूं और इस भ्रमसे संसारमें भटकता है, ऐसा कथन बन गया है।

प्रकरणसे प्राप्तव्य शिक्षा – स्वभावदृष्टिसे देखो तो जीव एकस्वरूप है, वह नृत्य नहीं करता, किन्तु इस अविवेकके नाचमें ये वर्णादिमान् पुद्गल ही नृत्य करते हैं। यह जीव तो रागादिकपुद्गलविकारोंसे रहित शुद्ध चैतन्यस्वरूप है—ऐसी भावनाके लिए यह वर्णन चल रहा है।

निवर्त्यमान पदार्थोंके परिज्ञानकी आवश्यकता— ६ प्रकारके विभावपुद्गलोंका अभी वर्णन किया गया है। नाना प्रकारके पुद्गल यद्यपि दिख रहे हैं, किंतु हे भव्य पुरुषोत्तम! तुम उन किन्हीं भी पुद्गलोंमें प्रेमभावको मत करो। जिनमें प्रीति नहीं करनी, जिनमें मोह नहीं बसाना, उन पुद्गलोंका अभी वर्णन चल रहा था। जिनसे प्रीति नहीं करनी, उनको यह बतानेकी आवश्यकता हुई है कि अनादिसे ये जीव उनमें मोह किए आ रहे हैं। जिनमें मोह किए आ रहे हैं, उनकी असलियत न मालूम पड़े तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहांसे मोह कैसे हटाया जाय ? ये समस्त पुद्गल जड़ हैं, मूर्तिक हैं, मेरे चित्स्वभावसे अत्यन्त भिन्न हैं, उन पुद्गलोंमें हे भव्य पुरुषोत्तम ! तू रति भावको मत कर।

परर‌तिपरिहार व निजरतिविहार— भैया ! रति तो चैतन्य चमत्कार मात्र अपना जो आत्मस्वरूप है उसमें कर। इसके प्रतापसे तू परम श्री जो अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी है उसका अधिकारी होगा। ये पुद्गलके वर्णन राग करने के लिए नहीं किए गए हैं किन्तु राग हटानेके लिए किए गए हैं। इनमें तेरा कोई गुण नहीं है। इन पुद्गलोंमें दृष्टि लगाकर इनमें ही संग्रह विग्रहकी कल्पनाएँ करके अपना घात क्यों किया करते हो ? इन सब पुद्गलोंसे अत्यन्ताभाव रखने वाले इस निज चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मतत्त्वको देखो।

पुद्गलके प्रकरणमें सर्वप्रथम कारणपरमाणुवों, और कार्यपरमाणुवोंका जिक्र किया था। अब उस ही स्वभावपुद्गलके इन दो भागोंका वर्णन श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव करते हैं।

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणंति तं णेओ।
खंधाणं अवसाणो णादव्वो कज्जपरमाणू ॥२५॥

कारणपरमाणु और धातुचतुष्क—कारणपरमाणु तो वह है जो चारों धातुवोंका कारण होता है। चार धातुवें हैं पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। यद्यपि देखनेमें वनस्पति भी एक स्वतंत्र काय है और दो इन्द्रिय आदिक पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके शरीर भी काय हैं और धातु चतुष्टय इन दोनों का ग्रहण नहीं करता है फिर भी ग्रहण हो जाता है। जो कड़ी चीज है पिण्डरूप चीज है वह सब पृथ्वी तत्त्वमें आ गया। यद्यपि भिन्न क्षयोपशम वाले जीवोंके भेदसे पृथ्वीमें और मनुष्यादिक शरीरोंमें भेद है, फिर भी पिण्डरूपताकी दृष्टिसे स्थूल स्थूलपनेकी दृष्टिसे यह सब पृथ्वी मान लीजिए।

पिण्डरूप कार्योंको पृथ्वीमें गर्भितकी जा सकनेकी दृष्टि—पृथ्वीमें ये सब पिण्डात्मक चीजें आ गयीं। पेड़ होना, कीड़ा मकौड़ा का शरीर होना, मनुष्यका शरीर होना ये सब पृथ्वीमें मान लिए गए। व्यवहारमें भी कहते हैं कि यह मिट्टी है शरीरके जलनेपर कहते हैं कि मिट्टी मिट्टीमें मिल गयी तो एक दृष्टिसे जितने ये पिण्डात्मक काय हैं वे पृथ्वी कहलाते हैं।

जल धातु—पृथ्वीकी जातिसे जल भिन्न जातिका है, वह प्रवाही है। कोई पिण्ड रूप नहीं है। जैसे चौकीका एक हिस्सा पकड़ कर ले जावो तो सारी चौकी जाती है, पृथ्वीके ढेलेको जरा भी पकड़ कर खींचो तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सब खिंच आता है इस तरह पानी तो नहीं है कि मुट्ठीमें पानी पकड़ कर खींच लें तो कुवेका सारा पानी खिंचा चला आए। वह ऐसा स्थूल पिण्डात्मक नहीं है।

अग्नि व वायुनामक धातु—जलकी जातिसे अग्नि जुदी चीज है। परस्पर दोनों विरोधी हैं। जल आगको मिटा देता है और आग जलको खौला देती है। ये मूषक बिलाव जैसे परस्पर विरोधी हैं। देखो इसीलिए आचार्योंने जो ५ स्थावरोंका सूत्र बनाया है— "पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः" पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तो पहिलेकी जो तीन चीजें हैं पृथ्वी, जल और आग, इन तीनोंके बीचमें जल रखा है। बीचमें जल नहीं आवे और पृथ्वी और आग, समीप हो जायें तो क्या हाल हो सब भस्म हो जायें। यह शब्दोंकी बात कह रहे हैं। परसोनीफिकेशन अलंकारमें देखो तो जल और आग दो विरोधी जातिकी दो धातुवें हैं। वायु यह भी विचित्र जातिका है। वायु चलती है और शरीरमें लगती है, आंखों नहीं दिखती।

धातुचतुष्ककी एकद्रव्यता—ये चार धातुवें हैं, इनकी जाति न्यारी न्यारी है। प्रकरणवश जितनी सीमामें न्यारा-न्यारापन दिखता है उतना ही देखता है यह जीव। वैसे तो ये चारों एक पुद्गल जातिके हैं। ये भिन्न-भिन्न जाति के चार तत्त्व नहीं हैं।

पदार्थोंकी जातियोंके सम्बन्धमें बेमेल दर्शन—देखो कुछ दार्शनिकोंकी बात कि चार महाभूतोंको तो स्वतंत्र स्वतंत्र तत्त्व कहते हैं जो कि मूलमें एक जातिरूप हैं। पृथ्वी जल बन जाय, जल आग बन जाय। आग हवा बन जाय, जो चाहे जो बन जाये। ऐसे जो भिन्न-भिन्न जातिके नहीं हैं उन्हें तो स्वतंत्र चार तत्त्व कहा और चैतन्य (जीव) जो कि अत्यन्त पृथक् जातिका है उसे कहते हैं कि भूतसे उत्पन्न हुआ, पृथ्वी, जल, आग, वायुसे बना। कितनी बेमेल बात कही जा रही है? जो एक है उसे तो अनेकमें रख दिया, जो विलक्षण नहीं है उन्हें तो विलक्षण मान लिया और जो इन चारोंसे अत्यन्त विलक्षण हैं ऐसे चैतन्य तत्त्वोंको भूतोंसे उत्पन्न हुआ मान लिया। पृथ्वी, जल, आग और वायु एकमें मिल जायें तो क्या जीव बन जाता है। ऐसा कहने पर बड़ा घपला हो जायेगा। कहीं मिट्टी की हंडीमें चूल्हे पर कढ़ी बनाये तो उसमें से आदमी, सेर आदि निकलने चाहियें क्योंकि वहां पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चारों चीजें मिल गयी हैं। देखो जो अत्यन्त विलक्षण तत्त्व है चैतन्य, उसे तो मान लिया गया कि भूतोंसे उत्पन्न हुआ और ये भूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु जो एक पुद्गलके परिणमन हैं उन्हें भिन्न मान लिया गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धातुचतुष्कोंका परिवर्तन—बतावो पृथ्वी कभी जल बन सकती है या नहीं? बन जाती है। चन्द्रकांतमणि या और भी अनेक दृष्टान्त हैं वे गल जाते हैं और पानी हो जाते हैं। जल आग बन जाता है कि नहीं? बन जाता है। जब जल गरम हो जाता है, गरमीका रूप रख लेता है तो उसमें अग्नितत्त्व आ गया अथवा कालान्तरमें जलके अणु आगरूप बन सकते हैं पृथ्वी आग बन जाती है कि नहीं? बन जाती है। कोयला, लकड़ी, पत्थर ये सब आग बन जाते हैं। कोई कुछ बन जाय, यह सम्भव है इन चारोंमें।

प्रत्येक धातुमें गुणचतुष्कताके सम्बन्धमें चर्चा—इस सम्बन्धमें कुछ लोग यह कहते हैं कि पृथ्वीमें तो गंध पायी जाती है। पृथ्वीका लक्षण गंध है और पानीका लक्षण है रस और आगका लक्षण है रूप और वायुका लक्षण है स्पर्श। उनका कहना है कि पृथ्वीमें गंध ही पायी जाती है और जलमें रस ही पाया जाता है और ऐसा मानते भी हैं कि लोग भी झटिति जलमें से रस तो आप समझेंगे और अग्निमें रूप समझेंगे और हवामें स्पर्श समझेंगे और इतना तो जल्दी ध्यानमें आयेगा कि हवामें स्पर्शके सिवाय कुछ नहीं है। न रूप देखनेको मिलता है, न गंध, न रस। किसी हवामें कोई गंध आ जाय तो उसे हवाकी गंध नहीं कहते, किन्तु जिन कूड़ा कचरोंको बिखेरती हुई हवा आयी है उन कूड़ा कचरोंकी गंध है। कूड़ा कचरा है पृथ्वी।

प्रत्येक धातुमें गुणचतुष्कता—भैया! वास्तविक बात यह है कि पृथ्वी में भी रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों गुण हैं, जलमें भी चारों गुण हैं अग्नि में भी चारों हैं और वायुमें भी चारों हैं। चाहे आपको कोई चीज मालूम पड़े अथवा न मालूम पड़े। यह नियम है कि इन चारों विषयोंमें से एक भी चीज हो तो वहां ये चारों ही होंगे। अग्नि किसी ने चखी है क्या कि यह खट्टी होती है या मीठी? शानमें आकर कहीं चखने नहीं बैठ जाना। कोई रस तो अग्निमें नहीं चखा गया, फिर भी उसमें रस है, अव्यक्त है। चारोंमें चारों गुण पाये जाते हैं। पृथ्वीकी बात तो जल्दी समझमें आ जायेगी कि उसमें रूप है, रस है, गंध है, स्पर्श है। जलकी बात जरा कम समझमें आयेगी। जलमें गंध जल्दी नहीं मालूम होती, रूप दिख जाता है, रस दिख जाता है, स्पर्श दिख जाता है पर गंध नहीं मालूम पड़ता। पर गंध भी है उसमें। हवामें केवल स्पर्श मालूम होता है पर हैं उसमें भी सब। एक भी न हो ऐसी बात नहीं है। ऐसे ही अनुमान करलो कि जो चीज जिस चीजको बनाती है जिसने बनाया उसमें जो गुण होंगे वे कार्य में भी गुण आ गये। मिट्टीका घड़ा बनता है तो मिट्टीमें जो गुण पाया जाय वह घड़ा बनने पर भी उसमें रहता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हवामें भी गुणचतुष्कता—अच्छा देखिये—एक अनाज आता है जौ। जौ बहुत सस्ता अनाज था, तब लोग जौ भी खूब खाते थे। अब इतना मंहगा अनाज हो गया, फिर भी जौ बहुत कम लोग खाने वाले होंगे। देखो कितनी विचित्र बात है? जौ में बतावो कि रूप है या नहीं? है। इसमें रस भी है, गंध भी है, स्पर्श भी है। जौ से हवा बनती है पेटमें। जौ खा लो तो उससे भारी हवा बनती है, जो परेशान करती है। यह हवा पेटमें नीचेसे निकल जाती है। इससे हवा बहुत बनती है। उस हवामें भी चारों गुण हैं। मालूम पड़े अथवा न मालूम पड़े, समस्त पुद्गलोंमें चारों गुण हैं। बांस तो पृथ्वी है ना, प्रकरणके अनुसार चारों धातुवोंमें सबको गर्भित करना है। बांसोंके आपसमें रगड़ खानेसे आग पैदा हो जाती है। जिसके उपादानमें ये चारों चीजें हैं, उसके कार्यमें भी चारों बातें हैं। इस तरह ये चारोंके चारों ही धातुवें एक पुद्गल जातिमें आयीं, लेकिन कुछ सीमा तक इसमें जातियां बन गयीं और उन दृष्टियोंसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—ये भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं।

परमाणुवोंमें धातुकी कारणरूपता—चारों धातुवोंका जो कारणरूप है, उसे कारणपरमाणु जानों अर्थात् परमाणुकी व्यक्त शक्ल किन रूपोंमें हुआ करती है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि धातुवोंके रूपमें। यह तो हुआ कारणपरमाणु। जो इन चार धातुवोंका बीजभूत है और इन स्कंधों का जो अवसान है, बिछुड़ते-बिछुड़ते जो अंतिम अविनाशी अंश है, उसे कार्यपरमाणु कहते हैं। वह परमाणु था नहीं परमाणुके रूपमें, अब विघटते-विघटते वह परमाणु रह गया, अविभाज्य अंश रह गया। परमाणु अंश नहीं है, अंशी है, परिपूर्ण है, अविभाज्य है, वह कार्यपरमाणु कहलाता है। इस गाथामें कारणपरमाणु द्रव्यका और कार्यपरमाणु द्रव्यका स्वरूप बताया गया है। जो पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार धातुवोंका कारणभूत है, उसे तो कारणपरमाणु कहते हैं।

परमाणुवोंकी बन्ध्यरूपता—वह कारणपरमाणु जब जघन्यपरमाणु रह जाता है अर्थात् स्निग्धरूक्ष गुणकी जब वहां अनन्तता नहीं रहती है, जघन्यअंशित्वको किए रहता है, तब चाहे एक जातिके हों अथवा भिन्न जातिके हों, वे बंधके अयोग्य हैं। पुद्गलपरमाणुवोंमें जो कि अलग बिखरे हुए हैं, वे स्कंध बनें, मिल जायें इसका कारण तो वहां है स्निग्ध और रूक्षगुण। जो वर्णन चलता है स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः, वह परमाणु-परमाणुके लिए बात है। स्कंध और स्कंधोंका वर्णन नहीं है कि इस प्रकार से वे एक दूसरेको अपने रूप परिणम लें, किन्तु परमाणुवोंमें यह बात है कि कोई अजघन्यगुणी चिकना परमाणु हो और उससे दो गुण अधिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमाणु हो तो वे दोनों एक स्कंध बन जायेंगे और वह स्कंध सारा रूक्ष हो जायेगा। जो गुण अधिक है, उसी रूप दूसरा परिणम जायेगा।

परमाणुवोंके बंधनका कारण— यह बंधन स्निग्धरूक्षगुणके कारण होता है। ठण्ड-गरमीके कारण नहीं कि एक ठण्डा परमाणु हो और एक गरम परमाणु हो अथवा एक कम ठण्डा हो, दूसरा अधिक ठण्डा हो और वे परमाणु मिल जायें, एक बंध हो जाये—ऐसा उस गुणके कारण एक बंधन नहीं होता है। स्निग्धरूक्षगुण जब अपनी बंधनयोग्यकी सीमामें जितने अंश होना चाहिये, उन अंशोंसे ऊपर हो और अन्याणुमें अधिक दो गुण हो जायें तो उसका परस्परमें जो बंध है वह समबंध है और तीन गुण अधिक वाले परमाणुवोंका पांच गुण अधिक वाले परमाणुवोंके साथ बंधन होनेको विषमबंध कहते हैं। यह चर्चा है परमाणुवोंकी।

पुद्गलोंकी परिस्थितियां— उन परमाणुवोंके जाननेसे क्या फायदा और न जाननेसे क्या बिगाड़? हो गए रहने दो। इतना जानना तो आवश्यक है कि आत्मातिरिक्त अन्य सब पदार्थोंसे अत्यन्त पृथक हूं, फिर भी जितना अधिक बोध होगा, उतनी ही भेदविज्ञानकी विशदता प्रबलतामें सहायता होगी। अब जो अनन्तगुणोंसे ऊपर दो गुण, चार गुण आदिका बंधन कहा गया है, वह उत्कृष्टपरमाणुकी बात है। वैसे उससे कम अंशके भी स्निग्ध और रूक्षमें बंध होता है, पर जघन्यगुण वालेके साथ बंध नहीं होता है। यह आचार्यदेवके द्वारा सर्वज्ञ प्रतीत उपदेश बताया गया है। ये बिखरे हुए परमाणु किस ढंगसे ऐसे एक स्कंधरूप हो जाते हैं कि उसमें परमाणुसम्बन्धी कार्य अब व्यक्त नहीं होता। चौकीके रूपमें परमाणुवों का पुञ्ज हो गया तो अब परमाणु परमाणुके रूपमें परिणमन व्यक्त कर सके, यह बात अब कहां है? जला दो तो जल जायेगा। परमाणु कहीं जलते भी हैं?। अतः ये अणु इस प्रकार स्निग्धरूक्षगुणके कारण बंधन को प्राप्त होते हैं।

अणुवोंके प्रकार— चार प्रकारके अणु हैं—कारणपरमाणु, कार्यपरमाणु, जघन्यपरमाणु, उत्कृष्टपरमाणु और मध्यके भेद लगावो तो परमाणु के अनन्त भेद हो जाते हैं। उस परमाणुद्रव्यमें विभावपुद्गल नहीं आये हैं। विभाव नाम है स्कंधपरिणमनका—ऐसा विभावका भेद है। वे अणु अपने स्वरूपमें स्थित हैं।

पारिणामिक भाव और परिणामका अनिवार्य सम्बन्ध—कारणपरमाणुवों का परमस्वभाव है पारिणामिक भाव। पारिणामिक भाव केवल चेतनमें ही नहीं होता है, बल्कि समस्त द्रव्योंमें पारिणामिक भाव है। वह एक स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो कि परिणमनका आधार स्रोतभूत है, जिसका परिणमन ही प्रयोजन है, उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। हे पारिणामिक भाव ! तुम किसलिये हो ? जरा जवाब तो दो। उसका जवाब यही होगा कि हमें कुछ मतलब नहीं है, हम तो परिणमनके लिये हैं। ध्रौव्यका प्रयोजन है उत्पादव्यय और उत्पादव्ययका प्रयोजन है ध्रौव्य। ये चीजें क्यों बनती बिगड़ती हैं ? क्या उत्तर होगा ? बने रहनेके लिये बनती-बिगड़ती हैं। ये चीजें क्यों बनी रहती हैं ? बनने-बिगड़नेके लिए बनी रहती हैं। यह सब पारिणामिक भाव प्रत्येक पदार्थमें होता है।

पुद्गलके परिज्ञानका प्रयोजन—अजीवाधिकारमें और अजीवमें मुख्य, जिसके साथ प्रकट निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध आत्माका चलता है—ऐसे पुद्गलका वर्णन चल रहा है। पुद्गल दो प्रकारके हैं—स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभावपुद्गल दो प्रकारके हैं—कारणपरमाणु और कार्य-परमाणु। विभावपुद्गल ६ प्रकारके हैं, जिनका इस गाथामें वर्णन है ही। इन सब पुद्गलोंको जानकर ज्ञानीसंत यह भावना करता है कि ये सब पुद्गल हैं, किन्तु इन ६ प्रकारके स्कंधोंसे मेरा क्या प्रयोजन और चार प्रकारके अणुवोंसे अथवा दो प्रकारके अणुवोंसे मेरा क्या प्रयोजन ? मैं तो अविनाशी शुद्ध आत्माका आराधन करूँ। प्रकरण अजीवाधिकारका है और उसमें सर्वप्रथम पुद्गलका प्रसंग है। उस प्रसंगमें अब परमाणुका स्वरूप बता रहे हैं।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियेगेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणाहि ॥२६॥

परमाणुका लक्षण— आत्मा ही जिसका आदि है, आत्माका अर्थ है अपना स्वयं। परमाणुका परमाणु ही स्वयं आत्मा है और वही स्वयं मध्य और वही जिसका अंत है। जो इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहणमें नहीं आता—ऐसा जो एक अविनाशीद्रव्य है; रूप, रस, गंध, स्पर्शगुणमय है, उसको तुम परमाणु जानो। बहुत पतली निबसे एक छोटा बिन्दु बना दो, जिससे और छोटा बिन्दु हो ही न सके—ऐसा कल्पनामें समझो तो उस बिन्दुका आदि व अंत अगर जुदा-जुदा है तो वह बिन्दु छोटा नहीं है, बड़ा है। छोटा बिन्दु वह होता है, जिसका आदि भी वही है, अन्त भी वही है और मध्य भी वही है।

परमाणुद्रव्य एकप्रदेशी होता है। उस एकप्रदेशी परमाणुमें यह विभाग कहांसे किया जाये कि छोर तो यह है तथा ओर यह है। वह तो एक अद्वैत प्रदेशमात्र है, इसलिये स्वयं ही आदि है, स्वयं ही मध्य है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयं ही अन्त है। वह इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य नहीं है। इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य तो कितने ही स्कंध भी नहीं होते हैं। परमाणु तो इन्द्रियग्राह्य है ही नहीं। ऐसा जो अविभागी मूर्तिक द्रव्य है वह परमाणु है। एक चीज उतनी कहलाती है जिसका कोई दूसरा विभाग न हो। कोई विभाग हो जाये तो समझना चाहिये कि वह एक चीज न थी, अनेक चीजें मिली हुई थीं और वे बिखर गयीं। जैसे दिखनेमें आने वाली चौकी, भींतादिक ये सब बिखर जाते हैं, टूट जाते हैं, ये एक चीज नहीं कहलाते हैं। इन्द्रियोंके द्वारा वे ग्राह्य नहीं हैं वरन् अविभागी हैं। एकका टुकड़ा नहीं होता यह पूर्णनियम है और हो गया टुकड़ा तो समझ लो कि वह एक चीज न थी।

जीव और पुद्गलकी सन्मात्रता—जैसे सभी जीव निगोदसे लेकर सिद्धपर्यन्त अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते। उन्हें सहजपरमपारिणामिक भावकी विवक्षाका आश्रय लेकर देखें तो इस निश्चयनयके द्वारा कोई कभी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता, यह इष्ट होगा। आत्माका स्वरूप है शुद्ध ज्ञानस्वभाव, ज्ञानज्योति, प्रतिभासमात्र। यह प्रतिभासात्मकता किसी भी जीवसे अलग नहीं होती है और परमपारिणामिक भाव का लक्ष्य कराने वाले सहज निश्चयनयसे देखा जाये तो वह चूंकि स्वरूपमात्र दिखता है, अतः उस दृष्टिमें जीव-जीवके कहनेमें भी अन्तर नहीं है। वह अपने स्वभावसे कभी च्युत नहीं होता। कोई जीव चैतन्यात्मकता को छोड़कर अचेतन बन जाये—ऐसा कभी नहीं होगा। अब जरा इस सीमासे भी बढ़कर सामान्य गुण पर आयें तो वह सन्मात्र है। इस ही प्रकार इस परमाणुद्रव्यको उसी सहजनिश्चयनयके द्वारसे देखा जाये तो उसमें भी पारिणामिक भाव है। परमस्वभाव है, उस दृष्टिसे देखें तो यह भी सन्मात्र है।

परमाणुका अभिन्न आदिमध्यान्तपना—यह परमाणु स्वयं ही खुद आदि है। खुदका अर्थ संस्कृतमें आत्मा है। आत्माका अर्थ चेतनपदार्थ भी है और आत्माका अर्थ जिस पदार्थसे कहो वही पदार्थ है। जैसे बोलते हैं अजीव पदार्थके विषयमें कि यह चौकी अपने आप नहीं गिरी, अतः वहां अपने आपका अर्थ चौकी है, जीव नहीं है। चूंकि आप शब्दका प्रयोग अचेतनमें भी हुआ करता है। आत्मा शब्दका प्रयोग सभी पदार्थोंके लिये है, जिसका अपन खुद ही आदि है, जिसका अपन खुद ही अन्त है और वही मध्य है। एक प्रदेशमात्र कोई वस्तु है, उसका आदि और अन्त अलग-अलग नहीं है। उस ही का स्वरूप आदि है, उस ही की स्वतन्त्र परिणति मध्य है और उस ही का स्वतन्त्र परिणाम अन्त है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमाणुकी इन्द्रियगोचरता व अविभागिता—आदिमध्यान्तरहितताके कारण वह इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं है। वह न जलसे डूब सकता है, न अग्निसे जल सकता है, यह स्कंध जलमें गल जाय और अग्निमें जल जाय पर परमाणु नहीं जलता है और न भीगता है। वह तो एक प्रदेश मात्र अन्तरके व्याघातसे रहित एक अविभागी अमूर्त द्रव्य है, उसे हे शिष्य ! तुम परमाणु समझो। परमाणुका लक्ष्य अनेक प्रकारसे कहा गया है। उन सब लक्षणोंसे वह परमाणमें ही उपयोग वासित होता है। जो आकाशके एक प्रदेशसे अधिक प्रदेश पर न रह सके उसे परमाणु कहते हैं, पर एक प्रदेश पर अनेक परमाणु ठहर सकते हैं मायने एक परमाणु अनेक प्रदेशों पर नहीं ठहर सकता।

स्वरूपच्युतिका खेद—देखो भैया ! ये सब परमाणु अपने स्वरूपमें कैसे निर्बाध हैं, त्रिकाल अपना स्वरूप नहीं छोड़ते, कितने भी स्कंधोंमें मिल जायें, एक बंधनको प्राप्त हो जायें तो भी कोई परमाणु अपने स्वरूप का परित्याग नहीं कर पाते हैं। तो ये परमाणु तो अपनी ईमानदारीमें बने रहें और जानदार समझने वाला तीनों लोकमें सर्व श्रेष्ठ पदार्थ यह आत्मा अपने स्वरूपमें नहीं ठहर सकता तो इसे कितना अज्ञान कहा जाय?

सिद्धात्मा व शुद्धाणुकी श्रेष्ठता—सिद्ध भगवान तो ध्रुव रूपसे अपने स्वरूपमें ठहरे रहा करते हैं, परमाणु एक शुद्ध पदार्थ है और सिद्ध भगवान भी एक शुद्ध पदार्थ है। जैसा सिद्ध अपना अनन्त चमत्कार लिए हुए है इस ही प्रकार परमाणु भी अपना चमत्कार लिए हुए हैं। अपन हैं सिद्ध भगवानकी जातिके इसलिए सिद्धका गुणगान करते हैं। अगर कोई परमाणु और सिद्ध इनमेंसे किसी बिरादरीका न हो, कोई तीसरा हो तो वह तुलनामें दोनोंको समान तोलेगा, पर है नहीं कोई तीसरा ऐसा जो तौल सके। तौल सके तो वह जीव आ गया तो जैसे सिद्ध भगवान चैतन्यात्मक निज स्वरूपमें ठहरे रहा करते हैं इसी तरह शुद्ध परमाणु अपने स्वरूपमें अवस्थित रहते हैं।

कारणसमय व कार्यसमयकी भांति कारणपरमाणु व कार्यपरमाणमें स्रोत व उद्गम—जैसे कारण समयसारका आश्रय करके समय नामक पदार्थ कार्यसमयसाररूप होता है इस ही प्रकार कारणपरमाणुके आश्रयमें ही परमाणु व्यक्तरूप अपना परिणमन किया करते हैं। जैसा आत्माका समस्त परिणमनोंका स्रोतभूत प्रयोजनभूत सहज शाश्वत चैतन्य प्रभु है जिसे पारिणामिक भाव कहते हैं इस ही प्रकार पुद्गल परमाणुके समस्त परिणमनोंका स्रोतभूत उसका भी पारिणामिक भाव है, पारिणामिक भाव ध्रुव है, उसका प्रयोजन परिणाम है। परिणाम अध्रुव है, उसका प्रयोजन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पारिणामिक भाव है, यह समस्त विश्व अर्थात् छहों जातिके पदार्थ व्यक्तिगत रूपसे अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य, ये प्रत्येक पदार्थ अनेक अन्य पदार्थोंके साथ एकक्षेत्रावगाह होकर संकर बन रहे हैं, फिर भी अपना स्वरूप नहीं तजते।

सत् की स्वयं सुरक्षा—पदार्थका स्वरूप है उत्पाद व्यय ध्रौव्य। प्रत्येक पदार्थ बनता है, बिगड़ता है फिर भी सदा बना रहता है। ये तीन बातें प्रत्येक पदार्थमें हैं। हम आप लोग किसलिए घबड़ाते हैं? अरे हम भी निरन्तर बनते हैं, बिगड़ते हैं और बने रहते हैं। यदि इन समागमोंका लोभ करके उनके छूटनेका ख्याल आने पर विषाद होता है तो अपनी बुद्धिको संभालें। आज यहां मनुष्य बने हैं तो पहिले कहीं और बने थे, अब आगे और बनेंगे। जहां जायेंगे वहीं पुद्गलोंका कूड़ा तुरन्त मिल जायेगा। फिर इस ही एक विशिष्ट कूड़े से क्यों मोह है? आगे मिल जायेगा। जायेगा कहां? मिलेगा शरीर न्यारे-न्यारे ढंगका। पर आप को तो मोहकी पड़ी है। सो इस प्रयोजनमें बाधा न आयेगी। जो होगा उसमें ही मोह करके आजकी चतुराई को निर्बाध बना सकेंगे और फिर दूसरी बात यह है कि अपना विनाश कहां है, सदा बने रहने वाले पदार्थ हैं। सब हैं सो अपन भी सदा बने रहने वाले हैं। बनना, बिगड़ना, बने रहना जब हमारा स्वरूप है तब फिर भय किस बातका? अपने स्वरूपका यथार्थ श्रद्धान हो, यथार्थ ज्ञान हो और उस ही में रमण करें तो फिर वह खेदकी बात नहीं रहती है।

जैनसिद्धान्तमें मुख्य दो प्ररूपणा— जैनसिद्धान्त आधाररूप स्वरूप और कर्तव्यरूप स्वरूप दो सूत्रोंमें बता दिया है। उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्—यह तो वस्तुका स्वरूप बताया है जिसका परिज्ञान करके हम अपने कर्तव्यमें सफल हो सकेंगे। तथा कर्तव्य बताया है—'सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः' सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों का सद्भाव एकत्व मोक्षका मार्ग है। दो ही बातें प्रधान हैं जिनके विस्तार में फिर समस्त दर्शन आ जाता है। वस्तुस्वरूप और मोक्षमार्ग।

राष्ट्रीय ध्वजमें वस्तुस्वरूपका वर्णन—आजका जो राष्ट्रीय ध्वज है सब को मालूम है तिरंगा है—हरा पीला और सफेद। और तिरंगा ही वस्तु स्वरूप है, तिरंगा ही मोक्षमार्ग है। वस्तुस्वरूपमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य बताया है। साहित्यमें उत्पादका वर्णन हरे रंगसे किया जाता है। उत्पाद होना मायने हरा भरा होना। अभी कोई बुढ़िया से पूछे कि कहो बुढ़िया जी मजेमें हो? तो वह बुढ़िया कहती है कि बहुत मजेमें हैं, हम खूब हरी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भरी हैं—नाती हैं, पोते हैं, खूब धन भरा है। तो उत्पन्न होनेको लोग हरा कहते हैं। कहते हैं कि वह तो बहुत हरया रहा है। तो उत्पाद व्यय जो हैं वह हरे रंगसे वर्णित होता है और व्ययका वर्णन होता है लाल रंग से। लाल पीला केसरिया ये सब एक जातिके ही रंग हैं कुछ तारतम्यके साथ। जहां विनाशका वर्णन आता है, वहां लाल रंगका वर्णन किया जाता है खून खच्चर हो गया, लाल ही लाल जमीन हो गयी बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। इस कारण सर्वसंहार हो गया। तो विलयका वर्णन लाल रंग से होता है। सो तिरंगा का एक रंग यह भी है और ध्रौव्यका वर्णन सफेद रंगमें होता है जो ध्रुव है, स्थिर है, स्वच्छ है, शाश्वत है। तो तिरंगेमें हरा रंग उत्पादका सूचक है, लाल पीला रंग व्ययका सूचक है और श्वेत रंग ध्रौव्यका सूचक है। और भी देखो कि इन रंगोंमें बीचमें कौनसा रंग है, राष्ट्रीय पताकामें सफेद है और नीचे ऊपर लाल और हरा है। सफेद रंग बीचमें यह सूचना देता है कि जिस रंग पर हरा लाल चढ़ता है वह सफेद पर ही चढ़ता है। उत्पाद व्यय जो हुआ करते हैं वे ध्रौव्य तत्त्व पर ही हुआ करते हैं। ध्रुव वस्तु न हो तो उत्पाद और व्यय कहांसे हों?

वस्तुस्वरूपके बारेमें चौबीस आरेका मर्म—और भी देखलो, २४ आरे का एक चक्र बना हुआ है जो यह सूचित करता है कि प्रत्येक वस्तुमें षड्-गुण, षड्भाग हानि व भागवृद्धि है तथा परिणमन दो क्षणोंके पर्यायोंसे कहलाता है सो चढ़ाव उतार सब चौबीस हैं। सिद्धान्तवेत्ता जानते हैं, अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, ये ६ वृद्धियां होती हैं और ६ हुई हानियां ये १२ हुई ना, और परिणमन एक समयके वर्तनाका नाम नहीं है, केवल एक ही षड्भाग वृद्धि हानि हो जाना, इतनेसे परिणमन व्यक्त नहीं होता है किन्तु अगले क्षणमें भी इसी प्रकारका परिणमन हो तब वहां परिणमन मिल जाता है। यों २४ आरेका चक्र वस्तुके प्रतिसमय की परिणमनशीलताको जाहिर कर रहा है। यह झंडा फहर कर यह बताता है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।

राष्ट्रीय ध्वजमें परमकर्तव्यका संकेत— इस प्रकार वस्तुज्ञानका परिचय करके आत्माका श्रद्धान् करना, ज्ञान करना और आचरण करना कर्तव्य है। आत्मश्रद्धान् आत्मरुचिको कहते हैं और रुचिका रंग साहित्यमें पीला बताया गया है। सम्यक्चारित्र कहो, आचरण कहो, जिससे आत्माका विकास बढ़ता जाता है वह हरा रंग है। सम्यग्ज्ञानका श्वेत रंग है, वह स्वच्छ है। इस ज्ञानको ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। ज्ञानको ही सम्यग्ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहते हैं, स्थिर ज्ञानको ही सम्यक्चारित्र कहते हैं। अतः वे दो रंग भी ज्ञान पर ही चढ़ते हैं। २४ आरेका चक्र यह बतला रहा है कि आज २४वें तीर्थंकरका यह तीर्थ है। यह ध्वज फहराकर बतलाता है कि 'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। अब पुद्गलके सम्बन्धमें स्वभावगुण और विभावगुणका वर्णन करते हैं।

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं ॥२७॥

पुद्गलके स्वभावगुण और विभावगुण— एक रस, एक रूप, एक गंध और दो स्पर्श होना, यह तो है स्वभावगुण और विभावगुण तो सर्वइन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हो सके, ऐसा सर्वप्रकटपना है। पुद्गलमें चार गुणोंका होना अनिवार्य है—रूप, रस, गंध और स्पर्श। कोई भी पुद्गल इन चार गुणों से कम गुण वाला नहीं है। जहां इसमेंसे एक गुण वाला होता है, वहां चारों गुण होते हैं। ये गुण शक्तियां हैं, अनादि अनन्त स्वभावरूप हैं।

पुद्गलगुणोंके परिणमनोंका विवरण— अब पुद्गलके गुणोंमें प्रत्येकके भेद कहे जा रहे हैं। रस ५ प्रकारके परिणमनको प्राप्त होता है अर्थात् रसगुणके मूल ५ परिणमन होते हैं—तीखा, कडुवा, कषैला, खट्टा और मीठा। इन पांचोंमें सब रस आ गये। नमक, मिर्च—ये तीखे माने जाते हैं और करैला, गुरबेल, नीम—ये कटुस्वादमें आते हैं। कषैला जैसे आंवला होता है। खट्टापन नीम्बू, करौंदा जैसे फलोंमें होता है। शक्कर या अन्य मीठे फलोंमें मधुररस होता है। जितने प्रकारके रस होते हैं, वे इन पांचोंके तारतम्य और संयोगसे होते हैं और शुद्ध भी होते हैं। पुद्गल-परमाणुवोंमें इन ५ रसोंमेंसे एक रस रहता है। कोईसा भी रस हो। वर्ण ५ होते हैं—सफेद, पीला, नीला, लाल और काला। इन पांच वर्णोंमें सभी वर्ण आ गये। जो वर्ण नाना प्रकारके दिखते हैं, वे तो ५ वर्णोंमें तारतम्य और मिलावटको लिए हुए हैं। जैसे नीला, सुवापंखी तथा गुलाबी आदि रंग हैं—ये सब किन्हीं रंगोंके मेलसे बने हैं। पुद्गलपरमाणुवोंमें इन ५ वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण होता है। गंधशक्तिके दो भेद हैं— सुगन्ध और दुर्गंध। पुद्गलपरमाणुमें सुगन्ध या दुर्गंधमें से कुछ एक होगा। स्पर्शशक्ति के ८ परिणमन हैं—रूखा, चिकना, ठण्डा, गर्म, कड़ा, नरम, हल्का व भारी। इनमेंसे चार तो आपेक्षितस्पर्श हैं और चार स्वतन्त्रपरिणमन हैं। हल्का, भारी, कड़ा, नरम—ये स्कंधमें ही होते हैं। ठण्डा, गरम, रूखा, चिकना—ये स्पर्शगुणके स्वतन्त्रपरिणमन हैं। पुद्गलपरमाणुवोंमें इन स्वतन्त्रपरिणमनोंमें से कोईसे दो स्पर्श होते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक गुणके दो परिणमनके विरोधमें जिज्ञासा व समाधान—यहां जिज्ञासा हो सकती है कि एक गुणके दो पर्याय किसी पदार्थमें नहीं हुआ करते, किन्तु यहां एक परमाणुमें दो स्पर्श बताये जा रहे हैं। तब क्या इस नियमका उल्लङ्घन है कि एक पदार्थमें एक शक्तिके दो परिणमन एक समयमें नहीं होते ? समाधान यह है कि नियमका उल्लङ्घन कहीं नहीं है। वहां भी वास्तवमें दो शक्तियां हैं, दो गुण हैं। एक गुणके तो स्निग्ध और रूक्षत्व जैसा कुछ परिणमन होता है और एक गुणका ठंडा या गरम में से एक परिणमन होता है। उन गुणोंका नाम क्या है ? अतः अप्रयोजनीभूत होनेसे उनका नाम नहीं मिलता है, किंतु वे सब परिणमन स्पर्शन द्वारा ग्राह्य हैं, इस प्रयोजनको लेकर सामान्यरूपसे एक स्पर्शगुणके परिणमन बता दिये जाते हैं। जैसे जीवमें एक चैतन्यस्वभाव है, उस चैतन्यगुणके दो परिणमन हैं—जानना और देखना। तब क्या यहां भी इस नियमका उल्लङ्घन किया जा रहा है कि एक पदार्थमें एक शक्तिके एक समयमें दो परिणमन नहीं होते हैं ? समाधान यह है कि नियमका उल्लङ्घन नहीं है। जीवमें वैसे दो शक्तियां है—एक ज्ञानशक्ति और दूसरी दर्शनशक्ति। किन्तु उन दोनों शक्तियोंका कार्य प्रतिभासस्वरूप है, इस नातेसे एक चैतन्यस्वभावसे कह दिया जाता है।

परमाणुवोंके प्रकार— परमाणुमें एक समयमें दो स्पर्श होते हैं। इस प्रकार दो स्पर्श होना, एक रस, एक रूप, एक गंध होना, इसे कहते हैं पुद्गलका स्वभावगुण प्रवर्तना। एक कोई परमाणु किसी रूपको लिए हुए है, कोई परमाणु किसी रूपको लिए हुए है। इन पांचोंमें से कोई रूप हुवा, किसीका कुछ है, किसीका कुछ है। ५ रसोंमें से कोई रस हो और चार स्पर्शोंमें से कोई दो स्पर्श हों, दो गंधोंमें कोई गंध हो। कुल परमाणु हमें कितनी तरहके मिलेंगे ? इस गुणपरिणमनकी दृष्टिमें वहां मेलका कोई सवाल नहीं है। अतः ५ रसोंमें से ५ रूपोंका गुणा किया तो ५×५=२५ और उसमें दो गंधोंका गुणा किया तो २५ गुणा२=५० और उसमें चार स्पर्शोंका गुणा किया तो ५०×४=२००। अतः अनन्तपरमाणु २०० प्रकारके पाये जाते हैं।

विभावपुद्गलोंमें विभावगुण— यह तो जैनसिद्धान्त में परमाणुका स्वभावगुण बताया है और विभावगुण विभावपुद्गलमें होता है अर्थात् स्कंधोंमें विभावगुण होता है। उस विभावगुणके होनेमें स्पष्ट रूपसे यह जान लीजिए कि वहां ८ स्पर्शोंमें से कोईसे चार स्पर्श होते हैं। जब तक परमाणुवोंका मेल न बने तब तक उनमें कड़ा और नरमका भेद नहीं आ सकता है। एक परमाणुका क्या कड़ा होना अथवा क्या नरम होना,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकार हल्का भारी यह भेद भी एक परमाणुमें नहीं होता है। तो ये विभावस्पर्श विभावपुद्‌गलोंमें पाये जाते हैं। विभावपुद्‌गलका अर्थ है कि कई परमाणुवोंका पुञ्जरूप स्कंध। कमसे कम स्कंध दो अणुवोंका पिण्ड होता है और फिर बढ़ते-बढ़ते अनन्त परमाणुवोंका स्कंध होता है। सुई की नोक पर ही जितना टुकड़ा खड़ा हो सकता है कागजका या मिट्टीका उस कणमें अनन्त परमाणु हैं। अनन्त परमाणुवोंके पिण्ड स्वरूप भी कई ऐसे हैं जो आंखसे देखनेमें स्कंध नहीं आ सकते। इन स्कंधोंमें विभावगुण होते हैं।

विभावगुणोंकी इन्द्रियग्राह्यता—ये विभावगुण इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होते हैं। स्पर्शने स्पर्श जान लिया, रसना ने रस पहिचान लिया, घ्राण ने गंध समझ लिया, नेत्रसे रूप परख लिया और कर्णेन्द्रियसे शब्दका परिज्ञान कर लिया। समस्त इन्द्रियों द्वारा ये पुद्‌गल स्कंध ग्राह्य होते हैं। शब्द गुण नहीं है, न गुणका परिणमन है किन्तु वह एकद्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। पर वह इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होती है। कर्ण द्वारा, इसी कारण उसे कह दिया है।

शुद्धात्माकी भांति शुद्धाणमें एकत्व परिणमन—के एक परमाणु गुणात्मकताके इस प्रकरणमें यह जान लीजिए कि जैसे शुद्ध जीव अपने परिपूर्ण स्वतंत्रतया समर्थ एक एक गुणके कार्यमें निरन्तर रत रहता है, ऐसे ही ये परमाणु मेलसे रहित अपने स्वतंत्र एक एक गुण परिणमन से वे परिणमते रहते हैं। वे परमाणुके एक वर्ण रस आदिक होते हैं और उनसे वे विकाशमान हैं—रहो, उनमें मेरी कौनसी सिद्धि है? मेरी सिद्धि तो मेरे ही चित्तमें एक शुद्ध आत्मतत्त्व बसे तो है। वह परमाणुमें है अर्थात् गुणोंके पुञ्जमें है। परपदार्थ हैं, उनके कुछ भी शुद्ध परिणमनसे मेरे आत्मामें कोई सिद्धि नहीं है। इस कारण जो परमानन्दका अर्थी है ऐसा ज्ञानी संत एक निज आत्मतत्त्वकी भावना करता है।

निर्विकल्प समाधि—आत्माका हित निर्विकल्पसमाधिभावमें है। निर्विकल्प समाधि वहां प्रकट होती है जहां जाननहार और जाना जाने वाला यह एक रस हो जाता है। विकल्प उत्पन्न होनेका अवकाश वहां नहीं मिलता है जहां ज्ञान और ज्ञेय एक होता है। ज्ञान और ज्ञेय भिन्न हुए तो वहां विकल्प आ ही पड़ेंगे। ज्ञान और ज्ञेय भिन्न कब हो जाते हैं? जब जानने वाला तो यह आत्मा है और जाननेमें आये हुए हैं परपदार्थ तो पर और आत्मा ये एक रस कहां हो सकते हैं? ये तो अत्यन्त जुदा हैं। वहां विकल्प ही आयेंगे और कदाचित् इस आत्माको भी जाननेमें लगें इसमें अनन्तगुण हैं, ऐसा परिणमन है। सब चमत्कारों का ज्ञान करनेमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगें, क्या उस स्थितिमें भी हम निर्विकल्प समाधि पा सकते हैं ? खुद को जानकर भी यह खुदपर बना हुआ हो तो वहां भी समाधि नहीं पा सकते हैं। जब जाननहार ज्ञानमें जाननहार ज्ञानके स्वरूपको ही जाना तब वहां एक रस बनता है और निर्विकल्प समाधि प्रकट होती है।

निर्विकल्पसमाधिकी पात्रता—भैया ! ज्ञान ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावों को जाने तो वहां भी ज्ञान ज्ञेयका भेद पड़ जाता है। तो जहां अपने आपके गुणोंके, पर्यायोंके नाना प्रकारके परिज्ञानसे भी निर्विकल्प समाधि के अर्थ उस कालमें सिद्धि नहीं होती तो परपदार्थोंका ज्ञान करते रहनेसे, उनमें उपयोग दिए रहनेसे हमारी सिद्धि कहांसे होगी ? हैं ये सब जान लिया, हां इन्हें भी केवल जानकर छोड़ा तो पात्रता ऐसी जरूर है कि निर्विकल्प समाधि होगी। जो जाननेके साथ राग और द्वेषसे भी लिप्त हो जाता है उसके निर्विकल्प समाधि अथवा आनन्द प्रकट नहीं होता है। आत्माकी उत्कृष्ट सरलता यही है कि ज्ञान और ज्ञेयमें भेद न हो जाने पाय।

स्कन्धोंके परिज्ञानकी अपेक्षा परमाणुके परिज्ञानका अच्छा असर—इन्द्रिय द्वारा व्यक्त और अपने रागद्वेष संस्कारोंके कारण शीघ्र समझमें आने वाले इन स्कंधोंके परिज्ञानकी अपेक्षा परमाणुविषयक परिज्ञान करनेमें कुछ भलाई तो है, पर ज्ञान ज्ञेयकी एकरसता वहां नहीं हो पाती है। भलाई यों है कि परमाणुको जानकर जरा परमाणुमें रागद्वेष तो करो, आप क्या करोगे रागद्वेष ? और स्कंधोंको जानकर स्कंधोंमें रागद्वेष बना सकते हैं। फिर यों समझिये कि जैसे किसी को हिचकी बहुत आती हो और उसे कोई चालाक बालक चतुर बालक कुछ घबड़ाहटके ढंगसे उसको यह कहे कि तुमने आज बड़ा गजब कर डाला, उसकी चोरी क्यों की या और बात लगा दे जिससे वह कुछ अचम्भेमें पड़ जाय, तो इस अचम्भेकी स्थितिमें उसकी हिचकी रुक जाती है। लोग ऐसा करते भी हैं। तो जो कहीं कुछ समझमें आ रही है बात उनकी समझमें हिचकी नहीं रुकती और कोई कठिन ऊदबिलाव जैसी बातें मार दें अर्थात् एक विलक्षणताके बोधकी दृष्टि करा दें तो उसकी हिचकी रुक जाती है। तो परमाणुका परिज्ञान भी ऐसा विलक्षण बोध है कि परमाणुके वर्णनमें चाहे एक रस-पना एक वर्णपना एक गंधपना दो स्पर्शपनाके जाननेमें लगे और एक प्रदेशमात्र है, अविभागी है आदि बातोंके जाननेमें लगे, किन्तु दादा नानी की खबर तो रहेगी नहीं, और ऐसे ही धन वैभवकी खबर न रहेगी। तो इसमें कुछ नफासा मिला कि नहीं ? रागद्वेषके प्रवाहसे तो अलग हो गए, किन्तु यहां तो यह समझना है कि ऐसे भी विलक्षण स्वरूप वाले परमाणु के बोधमें भी हम विकल्प करें तो जानने वाला तो और है और जाननेमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

आया कुछ और है इस कारण वहां एक रसपना नहीं हो सकता है।

परपरिज्ञानके निरोधकी आवश्यकता—भैया! उक्त प्रकारसे जब तक भी बुद्धि परपदार्थोंको जानकर इष्ट अनिष्ट भाव लाती है अर्थात् व्यभिचारिणी है तब तक इसको पर-घर जानेसे मना करो। और जब हमारी आपकी बुद्धि इतनी समर्थ हो जाय कि ये परपदार्थ भी जाननेमें आएँ तो भी यह बुद्धि व्यभिचारिणी न होगी अर्थात् रागद्वेषको उत्पन्न करने वाली न होगी, जैसे कि ज्ञानीसंत पुरुषोंके ऊँचे गुणस्थान वालोंमें सामर्थ्य होती है ऐसी सामर्थ्य हो जाय तो वहां फिर हटने और लगनेका कोई उपदेश नहीं है, जो चाहे ज्ञानमें आए। जैसे नई बहुवोंको पर-घर जानेका सभी निषेध करते हैं और बड़ी बूढ़ी होने पर उन्हें कौन निषेध करता है, इसी प्रकार जब तक बुद्धि परपदार्थोंमें इष्ट अनिष्टकी कल्पना करनेके लिए बनी हुई है तब तक आचार्य महाराज मना करते हैं कि परको छोड़कर अपने आपको जानो, पर-घर न जावो। अपने ही घरमें बुद्धिको लावो और जब इस ज्ञानाभ्यासके द्वारा उदासीनता प्रकट हो जायेगी तबका यह वर्णन है कि चाहे परमाणु ज्ञानमें आये चाहे कुछ ज्ञानमें आए, पृथक्त्ववितर्क विचार व एकत्ववितर्क, अविचार ध्यानमें कुछ आता रहे उससे आत्मविकासमें कोई बाधा नहीं आती है। पर इस समय हम आप ऐसी स्थिति में हैं कि पर-घर जानेसे अपनी बुद्धिको रोकना चाहिए और अपने ही घरमें अपनी बुद्धिको लाना चाहिए। इस प्रकार स्वभावज्ञान और विभाव ज्ञानके प्रकरणमें यहां गुणदृष्टिसे परमाणु और स्कंधके परिणमनोंका वर्णन किया गया है।

अब पुद्गल पर्यायका स्वरूप बतला रहे हैं।

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जायो।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जायो ॥२८॥

पुद्गलका निरपेक्ष परिणमन—परमाणुरूप पर्याय पुद्गलकी शुद्ध पर्याय है और वह परमपारिणामिक भावस्वरूप है। जैसे सभी पदार्थोंमें वस्तुगत षट् प्रकारकी हानि गुणवृद्धिरूप परिणमन होता है जो कि अत्यन्त सूक्ष्म है और अर्थ पर्यायरूप है ऐसा अर्थपरिणमन इस पुद्गलके भी होता है। यह परिणमन पुद्गलमें द्रव्यत्व गुणके कारण स्वयमेव हो रहा है, किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षासे नहीं परिणमता। यह वस्तुका स्वभाव है कि वस्तु है तो निरन्तर परिणमता रहता है ऐसा कोई पदार्थ नहीं होता जो है तो जरूर किन्तु परिणमे नहीं। परिणमन बिना है की सिद्धि नहीं। होती है और है के बिना परिणमनकी सिद्धि नहीं है। परद्रव्यकी अपेक्षा न रखकर जो परिणमन होता है वह स्वभाव पर्याय है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वभावपरिणमन—स्वभाव पर्याय यद्यपि आदि अंतकर सहित है और ऐसा ही आदि अंत करि सहित निरन्तर उसमें परिणमन होता रहता है फिर भी स्वभावपर्याय परद्रव्यकी अपेक्षा न करके होता है, अतः वह शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयात्मक पर्याय है अथवा एक समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होनेसे सूक्ष्म परिणमन जो निरन्तर चलता रहता है वह इसकी शुद्धपर्याय है। जैसे आत्माके साथ अन्य द्रव्यका सम्बन्ध नहीं होता, उपाधिका संयोग नहीं होता तो वह आत्मा अपने स्वभावके अनुकूल समपरिणमन कर रहा है। इस ही प्रकार परमाणु जब अन्य परमाणुका भी सम्बन्ध नहीं पाता अथवा जीवका भी संयोग नहीं पाता तो वह परमाणु अगुरुलघुत्व गुणकृत षड्गुण वृद्धिरूपसे हानिरूपसे निरन्तर परिणमता रहता है।

व्यञ्जन पर्याय—दिखने वाले स्कंधोंमें कल्पनासे टुकड़े कर करके ऐसा आखिरी टुकड़ा ध्यानमें लावो कि जिसका दूसरा अंश हो ही न सके ऐसा ज्ञानमें आया हुआ निरंश अणु देखो और उसमें परिणमन विचारो तो वह परिणमन एक न की तरह ज्ञात होगा। जैसे अशुद्ध आत्माके परिणमन व्यक्त विदित होते हैं किन्तु शुद्ध आत्माका परिणमन व्यक्त विदित नहीं होता, इसी कारण यावन्मात्र अशुद्ध परिणमन हैं ये चाहे अशुद्ध गुणपर्याय हों अथवा द्रव्यपर्याय हों उन सबको व्यञ्जन पर्याय कहा गया है।

परमाणुमें एकत्व परिणमन—तो जैसे सभी द्रव्योंमें जो कि शुद्ध हैं उनमें द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमन चलता रहता है, इसी तरह शुद्ध परमाणुमें भी रूप, रस, गंध, स्पर्शका स्वतंत्र एकरूप परिणमन चला करता है अर्थात् जैसे स्कंधोंमें कई रंगोंके मेलका रंग भी दिखता है, जैसे—जैसे नीला, सुवापंखी, गुलाबी—ये सब रंग जो कि स्वतत्र नहीं हैं किन्तु रंगोंके मेलसे बने हुए हैं, परमाणुमें रंगोंके मेलका बना हुआ यह सब रंग नहीं हुआ करता है क्योंकि वहां मेल कहांसे आया? एक परमाणु एक रंगरूप है, दूसरा परमाणु भी एक रंगरूप है। यदि दो छोटे स्कंध जो विभिन्न रंगके हों और मिलकर पिण्ड बन जायें तो ऐसे स्कंधमें तो सम्भावना की जा सकती है अर्थात् एक परमाणुमें अपना ही शुद्ध एक रूप होता है। इसी तरह रस आदि गुणोंके परिणमनकी भी बात शुद्ध पायी जाती है।

जीव द्रव्यको ही उपदेशे जानेका कारण—६ जातिके द्रव्य होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल, इनमेंसे जीव और पुद्गल ये दो ही द्रव्य विभावरूप परिणम सकते हैं। शेष द्रव्य तो शाश्वत शुद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा करते हैं, इसलिए अन्य द्रव्योंको शुद्ध होनेका उपदेश नहीं है। इन दो द्रव्योंमें से पुद्गलको भी शुद्ध होनेका उपदेश नहीं है। पुद्गल शुद्ध हो जाए तो क्या, अशुद्ध रहे तो क्या? किसी भी अवस्थासे पुद्गलमें बिगाड़ नहीं है। यदि एक चौकीको काट-छेद करके बिगाड़ दिया तो हम आप लोग अपनी कल्पनासे मानते हैं कि चौकी बिगड़ गयी। पर वहां क्या बिगड़ा? चौकी तो जड़पदार्थ है। प्रत्येक परमाणु अपने आपमें अपना परिपूर्ण अस्तित्व लिए है। क्या बिगड़ा? यहां पर तो पुद्गलका कुछ बिगाड़ नहीं है। किसी भी रूप परिणमे, उनमें खेद नहीं होता है। एक जीवद्रव्य ही ऐसा है कि विकृतावस्थामें यह आकुलित रहता है और जन्म-मरणकी परम्परावोंमें क्लेश पाता रहता है। उसे उपदेश है कि अय जीव, अपने सहजस्वरूपकी संभाल तो कर, तभी ये कर्मबंधन, नोकर्मसंयोग, विभावोंके संकट समाप्त होंगे।

वीतराग विज्ञानस्वरूप— छहढाला हिन्दी भाषाकी एक बहुत ऊँची पुस्तक है, जिसमें सब उपयोगी बातें दी गयी हैं। मंगलाचरणमें यह बताया है कि तीन लोकमें सार जो वीतरागविज्ञान है; वह शिवस्वरूप है, कल्याणमय है और आनन्दका देने वाला है; उसे तीन योग संभालकर मैं नमस्कार करता हूं। कितने संक्षिप्त शब्द हैं और बड़े अर्थ मर्मसे भरे हुए हैं। तीन लोकमें सार क्या है? रागद्वेष रहित ज्ञानस्वभाव। यह ज्ञायकभाव स्वरसतः रागद्वेषादि विकारोंसे रहित है। यह वीतरागविज्ञान सब जीवोंमें पाया जाता है। हममें आपमें सबमें जो इसे नहीं जानते, वे दीन भिखारीसे बने रहते हैं और परपदार्थकी आशा किया करते हैं, परको अपना, अपनेको परका मालिक मानकर दुःखी हुआ करते हैं।

लोककी सर्वस्थितियोंमें क्लेश— भैया! लोकमें हुक्म माननेका ही दुःख है? अरे, जितना दुःख हुक्म मानने वालेको होता है, उससे भी कहीं अधिक दुःख हुक्म देने वालेको है। जितने क्लेश दूसरेके समक्ष छोटा बननेसे रहता है, उससे अधिक दुःख दूसरेके समक्ष बनकर रहनेमें होता है। लोग कह भी देते हैं कि उदय जिसका खराब हो तो बड़ा भाई या और कुछ बड़ा बनता है। अतः इस लोकमें किस चीजमें सुख मान लिया जाए? यदि किसीके पुत्र न हो तो मैं पुत्ररहित हूं, मेरे कुलको चलाने वाला कोई नहीं है, यों सोचकर दुःखी रहता है। जिसके पुत्र हों, वह भी तो दुःखी रहता है; नहीं तो बार-बार लड़कोंको क्यों मारता, क्यों दांत किटकिटाता? यदि पुत्र कुपूत हो गया तो उसका क्लेश होगा, व्यसनी हो गया, कुमार्गी भी हो गया, लड़ने-भिड़ने वाला हो गया, इस प्रकारके बड़े दुःख हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि कोई पुत्र सपूत बन जाए तो उस कुपूतसे भी ज्यादा दुःखदायी हो जाता है, क्योंकि यदि कुपूत लड़केसे बापका मन नहीं मिलता तो एक बार स्पष्ट कर दिया कि यह मेरा कोई नहीं है या अखबारोंमें छपा दिया कि अब मैं इसका जिम्मेदार नहीं; अगर पुत्र सपूत है तो यह ध्यान बना रहेगा कि मैं इसे समर्थ बना दूं, सुखी बना दूं, बड़ा आज्ञाकारी है, बड़ा विनयशील है; अतः उसको सुखी करनेके लिए रात-दिन परिश्रम करना पड़ता है।

सर्वस्थितियोंके क्लेशका कारण स्वयंका अज्ञानभाव-- भैया ! सभी बातों को ऐसा ही लगालो, हो तो दुःख और न हो तो दुःख। प्रयोजन यह है कि जब स्वयंमें कोई ऐब है, वासना अज्ञानकी बनी हुई है तो दुःख देने वाली तो अज्ञानवासना है, उसके कारण दुःखी रहा करता है। अतः लोकमें कहीं आनन्द नहीं है। शांतिका स्रोत है आनन्दका उपाय। एक वीतराग ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करना, यही आनन्दका उपाय है। खूब खोज लो कि जो सुखाभास होता है, उसमें भी पीछे पछतावा आता है, पर लोग सुख भोगनेके कालमें पछतावा महसूस नहीं करते। अतः तीनों लोकोंमें देवगति हो या नीचेका पाताललोक हो अथवा मध्यलोक हो; उसमें रहने वाले जितने जीव, उनके भोगसाधन, वैभव, इज्जत आदि समस्त बातों पर निगाह डाल लो। सुखदायी कुछ नहीं है, सारभूत कुछ नहीं है, यह मर्मकी बात, धर्मकी बात थोड़ासा बुद्धिका प्रयोग करें तो अनुभवमें उतर सकती है।

धर्म, अधर्मके फलकी प्रयोगसिद्धता— परको असार जानकर, विकल्प छोड़कर निर्विकल्पभावसे क्षणभर ठहर जाए तो अनुभूत हो जाएगा कि आत्माका स्वरूप अनादि, अनन्त है। जैसे कोई चीज बनाते हैं तो प्रयोग करते हुए देखते हुए देखते जाते हैं। जैसे चाकूकी धार लगाते हैं तो बीच-बीचमें थोड़ी अंगुली फेर कर देखते जाते हैं और वहां ज्ञान होता जाता है कि अभी धारमें थोड़ी कमी रह गयी, अब ठीक हो गयी अथवा रोटी सेकते जाते हैं और देखते जाते हैं कि इस तरफकी सिक गयी, उस तरफकी सिक गयी, अब फूल गयी, अभी इतनी कसर रह गयी, घुमाते जाते हैं, प्रयोग करते जाते हैं और समझते जाते हैं। इसी प्रकार धर्म और अधर्मकी बात प्रयोग करते जावो और समझते जावो, कोई कठिन बात नहीं है। विकल्पभाव दूर करो और धर्मका प्रयोग करके समझ लो कि सार और शांति यहां ही है या नहीं। अधर्मकी बातका प्रयोग तो किए ही हुए हैं अनादिसे और समझ रहे हैं। तीन लोकमें सार रागद्वेष रहित, विकाररहित जो शुद्ध ज्ञानस्वभाव है, वह स्वयं कल्याणरूप है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आनन्दको देने वाला है। अतः तीनों योग संभाल करके उस वीतराग-विज्ञानको नमस्कार हो।

पुद्गलमें स्वभावपरिणमन व विभावपरिणमन— शुद्ध ज्ञायकस्वभावमय आत्माको उस द्रव्यमें ही केवल अकेलेमें देखा जाए तो उसका परिणमन ऐसा रमा रहता है कि प्रतिक्षण परिणमन होता हुआ भी परिवर्तन समझ में नहीं आता। इस परमाणुमें भी परमाणुद्रव्यत्वके कारण उसमें प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है। प्रतिक्षण परिणमन होता हुआ भी परिणमनमें परिवर्तन नहीं हो पाता। वह ऐसे ही एकत्वको लिए हुए है। यह उसका स्वभावपर्याय है और पुद्गलका विभावपर्याय है। स्कंधरूपसे परिणमन हो जाना पुद्गलका स्वजातीय बंधन है। परमाणु परमाणु मिलकर स्कंध बनता है, इसे सजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। यह है पुद्गलद्रव्यकी विभावपर्याय, अकेला अणु रह गया वह तो है स्वभावपर्याय और अनेक अणु मिलकर स्कंध बन गए तो यह है विभावपर्याय।

परमाणुमें शब्दरहितता— इन परमाणुवोंमें, शुद्ध पुद्गलद्रव्यमें जो कि परपरिणतिसे दूर हैं, शुद्ध पर्यायरूप हैं, शब्द नहीं होते हैं। जैसे कि परपरिणतिसे परे शुद्धपर्यायात्मक परमात्मपदार्थमें कामादिक विकार नहीं होते हैं। शब्द एक विकारपर्याय है। अतः शब्दपर्याय भी शुद्ध पर्यायमें नहीं होती। भाषावर्गणा जातिके स्कंध पड़े हुए हैं जगत्में, सर्वत्र पड़े हैं। बोलते हैं तो तुरन्त इतने शब्दोंका विस्तार बन जाता है। भाषावर्गणाके उपादानमें परिणत ये सब शब्द पुद्गलद्रव्य हैं। पुद्गलको संदूकमें बंद कर सकते हैं, पुद्गलको उठाकर बहुत दूर तक फेंक सकते हैं। ऐसे ही ये शब्द भी पुद्गल हैं। उन शब्दोंको अपन रोक सकते हैं, टेपमें तो थाम लेते हैं, रिकार्डमें भी थाम लेते हैं और शब्द छिड़ जायें। भींत बीचमें हो या किवाड़ बंद हों, बाहरसे कोई चिल्लाए तो शब्द सुननेमें नहीं आते। ये शब्द पुद्गलद्रव्य हैं, विकारीपर्याय हैं। ये शब्दपर्याय शुद्ध पर्यायरूप परमाणुमें नहीं हैं, क्योंकि परमाणु स्वतंत्र अपने एकत्वको लिए हुआ पदार्थ है, वह परपरिणतिसे दूर है। स्कंधोंमें से स्वतन्त्रपरमाणुका जो कार्य है, वह नहीं हो सकता। वहां परपरिणतिका रंग सर्वपरमाणुवोंपर पड़ा है, स्कंधावस्थामें पड़ा है। केवल एक जो शुद्ध परमाणु है, उस परमाणु में परपरिणतिका रंग नहीं होता, इस कारण उसमें स्कंधपर्याय जो शब्दनामक है, वह नहीं हुआ करता है।

शुद्ध पदार्थोंके कैवल्यकी समानता—भैया! अपन चेतन हैं इस कारण चैतन्य शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी महिमा अधिक गाते हैं, पर जितने भी शुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य हैं उन सबमें शुद्धताकी महिमा पायी जाती है। इस कारण निष्पक्ष दृष्टिसे देखें तो जैसे परमाणु शुद्ध विलसित होता है इसी प्रकार सिद्ध जीव भी शुद्ध विलसित है। आकाशद्रव्य निरन्तर शुद्ध रहता है, जिसमें समस्त विश्वके पर्याय भी लोट रहे हैं, फिर भी आकाशमें विकार नहीं होता। ऐसे ही शुद्ध आत्माके स्थान पर अनेक विश्वके पदार्थ लोट रहे हैं, फिर भी उनमें विकार नहीं होता। और जब तक पुद्गल शुद्ध पुद्गल है वहां भी समस्त पदार्थ लोट रहे हैं फिर भी तो पुद्गलमें विकार नहीं होता है।

जीव व पुद्गलकी शुद्धतामें भविष्यत्का अन्तर—आत्माकी शुद्धता और पुद्गलकी शुद्धतामें यह अन्तर है कि आत्मा तो शुद्ध होकर फिर कभी अशुद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि आत्माके अशुद्ध होनेका कारण है राग द्वेष विभाव। रागद्वेष विभाव मूलतः एक बार नष्ट होने पर फिर उसका कार्यरूप कर्म नहीं आते और जब कर्म नहीं रहते तो कोई कार्यरूप रागद्वेष की सम्भावना नहीं रहती, किन्तु पदुगल परमाणुवोंमें परस्परका जो द्रव्य-बंधन है वह परमाणुके स्निग्धरूक्षत्व गुणके कारण है, स्निग्ध रूक्षत्व गुण परमाणुमें शाश्वत रहता है और उनका अविभाग प्रतिच्छेद भी स्वयं कर्म-वश हो रहा है परिणमनशीलताके कारण। तो जब बंधनकी योग्यता होती है व दो गुण अधिक उनका योग मिलता है तो भी परमाणु आपसमें बंधन को प्राप्त हो जाता है तब यह अशुद्ध कहलाने लगता है, पर जब तक परमाणु शुद्ध है तब तक उसके परपरिणति नहीं है, शब्द भी नहीं है। ऐसे पुद्गल द्रव्यके पर्यायोंके प्रकरणमें यहां स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय रूपसे दो प्रकारकी पर्यायें बतायी गयी हैं।

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छयेण इदरेण।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो ववदेसो होइ खंधस्स ॥२६॥

परमाणमें पुद्गलद्रव्यपना—इस अधिकारमें पुद्गल द्रव्यका व्याख्यान चला आ रहा है, उस ही प्रकरणमें यह अंतिम गाथा है। पुद्गलद्रव्य वास्तवमें अर्थात् निश्चय नयसे परमाणुओंको ही कहा जाता है, फिर व्यवहारसे स्कंधमें भी यह पुद्गल द्रव्य है ऐसा व्यपदेश किया जाता है। स्कंध द्रव्य नहीं है किन्तु पर्याय है और वह है समानजातीय द्रव्य पर्याय। जो स्वभावपर्यायात्मक है, शुद्धपर्यायवान् है ऐसे परमाणुमें ही शुद्धनयसे पुद्गल द्रव्यका व्यपदेश किया जाता है। और व्यवहारनयसे विभाव-पर्यायात्मक स्कंध पुद्गलका पुद्गलपना उपचारसे सिद्ध किया गया है। वैसे सबकी समझमें ये पुद्गल स्कंध ही पूरी तौरसे पदार्थ जंच रहे हैं और परमाणुकी तो खबर ही नहीं है। परमाणुका वर्णन आए तो ऐसा लगता है कि ऐसा कहनेकी विधि है, किन्तु परमार्थसे परमाणु ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुद्गल द्रव्य है।

पुद्गलद्रव्यमें अस्तिकायत्वकी औपचारिकता—जहां अस्तिकायके भेद कहे गए हैं वहां अस्तिकाय ५ बताये गए—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इसमें जीव तो सभी अस्तिकाय हैं, असंख्यातप्रदेशी हैं। जिसके प्रदेश अनेक हों उसे अस्तिकाय कहते हैं। धर्म, अधर्म और आकाश भी एक एक द्रव्य हैं और बराबर अस्तिकाय हैं, किन्तु पुद्गल द्रव्यमें परमार्थ द्रव्य तो परमाणु है, वह है एकप्रदेशी। एकप्रदेशीको अस्तिकाय नहीं कहा जाता है और स्कंध वास्तवमें द्रव्य नहीं है। इस कारण पुद्गल परमार्थसे ऐसे एक बंधन रूप स्कंध हो जाते हैं कि फिर उसकी ढाल चाल सब न्यारी हो जाती है। क्या परमाणु चलाया जा सकता है ? नहीं, किन्तु परमाणुका पुञ्ज स्कंध बन जाय तो स्कंध जलता भी है, गलता भी है, उठाया भी जाता है। जो बातें परमाणुमें नहीं ली जा सकती हैं वे सब बातें स्कंधमें स्पष्ट दिखती हैं। इस कारण पुद्गल द्रव्य को उपचारसे अस्तिकाय कहते हैं।

पुद्गलशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ और अन्वर्थत्व—पुद्गलका अर्थ है जो पूरे और गले, मिले और बिछुड़े। मिलना, बिछुड़ना अन्य द्रव्यमें सम्भव नहीं है। जैसे पुद्गल परमाणु बहुतसे मिलकर स्कंध बन जाते हैं ऐसे ही क्या कभी दो जीव मिलकर एक जीव हुए ? बहुत ही घनिष्ट प्रीति हो पर वस्तुस्वरूपका उल्लंघन कैसे किया जा सकता है ? दो जीव मिलकर एक कभी नहीं हो सकते हैं। मोही जीव चाहता है कि हम और ये दो न्यारे-न्यारे क्यों रहें, मिलकर एक पिण्ड बन जाएँ, पर क्या दो जीव कभी एक बन सकते हैं ? नहीं बन सकते। केवल पुद्गल ही ऐसे हैं जो बन्धनबद्ध होकर स्कन्ध होते हैं। सत्वकी दृष्टिसे तो वे भी एक नहीं बनते किन्तु ऐसा विशिष्ट बंधन हो जाता कि वह एक हो जाता है और व्यवहार में भी देख लो कई चीजें हैं तो सबका एक व्यवहार होता है, ऐसे पुद्गल को उपचारसे अस्तिकाय कहा है। उसका यह कारण है कि निश्चयसे तो परमाणु पुद्गलद्रव्य है और व्यवहारसे स्कंधको भी पुद्गल द्रव्यका व्यपदेश किया जाता है।

पुद्गलद्रव्यके विवरणका प्रयोजन—इस अजीवाधिकारके प्रकरणमें पुद्गल द्रव्यको न संक्षेपसे, न विस्तारसे किन्तु मध्यम पद्धतिसे आचार्य से आचार्यदेवने वर्णन किया है। पुद्गलका भी रंग ढंग जानना कल्याणार्थी जीवोंको आवश्यक है और वह इस रूपमें आवश्यक है कि हमें जिससे निवृत्त होना है, हटना है उसका भी परिज्ञान चाहिए। सो समस्त तत्वार्थ समूहको जानकर कर्तव्य यह हो जाता है कि समस्त परद्रव्योंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहे वे चेतन हों अथवा अचेतन हों उनको छोड़ना चाहिए, और परम-तत्त्व जो चैतन्य चमत्कार मात्र है, समस्त परद्रव्योंसे विविक्त है उसे निर्विकल्प समाधिमें रहकर धारण करना चाहिए। जिनदेवके शासनमें यह बात प्रमुख बतायी गयी है कि देखो भाई जीव अन्य हैं, पुद्गल अन्य हैं, इन समस्त पुद्गलोंसे उपयोग हटाकर जिस शरीरके बन्धनमें बँध रहा है उस शरीरको भी न सोचें और केवल ज्ञानज्योतिका चिंतन करें तो क्या ऐसा किया नहीं जा सकता है।

शुद्धोपयोगीके शुद्धात्मत्व—भैया ! इस ज्ञानमय तत्त्वमें बड़ी विलक्षण कला है, बन्धनकी अवस्थामें भी यह उपयोग बंधनको नहीं समझ रहा है, बंधनमें नहीं पड़ रहा है किन्तु शुद्ध आत्माका जो ज्ञायकस्वरूप है, अपने ही सत्त्वके कारण जो सहजस्वभाव है उस स्वभावको ही जान रहा है तो ऐसे उपयोगमें रहने वाले आत्मा को शुद्ध बताया जाता है। वह शुद्ध आत्मा है। जैसे कोई साधु महाराज मिर्च ज्यादा खाते हैं तो उनका नाम कोई मिर्च महाराज रखले, या जिसकी जिसमें रुचि होती है वह नाम रख लेता है तो जिसमें उपयोग बना हुआ है वह नाम व्यवहारमें भी लोग कह डालते हैं। यहां तो जिस ओर उपयोग बना है बस आत्मा उस रूप है। आत्माका लक्षण भी उपयोग है और उपयोगमें बस रहे हुए स्वभाव बाह्य विभाव भी विभावरूप बन रहे हैं, और उपयोगमें बस रहा हुआ शुद्धज्ञायक स्वरूप हो तो वह शुद्ध आत्मा है।

शुद्धात्मत्वकी पद्धति—भैया ! परद्रव्यका निरूपण करने वाले व्यवहारनयका विरोध नहीं करके और स्व द्रव्यका निरूपण करने वाले निश्चयका आलम्बन करके मोहको दूर करने वाला ज्ञानी संत अब परको अपनानेकी सामर्थ्य रख नहीं रहा क्योंकि परको पर जान लिया। कोई भावतः परको पर व निजको निज मान सके तो परद्रव्यसे हो जाती है उपेक्षा और स्वद्रव्यमें ही लग जाता है उपयोग। ऐसी स्थितिमें शुद्ध आत्माका जो उपयोग कर रहा है वह तो शुद्ध आत्मा है, यह सब उपयोगकी ओरसे देखा जा रहा है। आत्मद्रव्यके अगल बगलका यहां वर्णन नहीं है। उपयोग जिसको ग्रहण किए हैं तो उपयोगात्मक आत्मा वही है जो कुछ उसके घरमें आए।

निष्पन्नयोगीका साम्यभाव—बहुत दृढ़तर जिसे शुद्ध अंतस्तत्त्वका अभ्यास हो जाता है उसको तो यह भी कल्पना मात्र जंचती है कि पुद्गल अचेतन है और जीव चेतन है। जैसे जीव जीवको जीवोंमें साधारणतया पाये जाने वाले चैतन्यगुणकी दृष्टिमें देखता है तो क्या नजर आता है कि चाहे संसारी जीव हो, और चाहे मुक्त जीव हो सब एक समान हैं। ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान किया जाता है कि नहीं ? और, जब जीव पुद्गल धर्मादिक सभी द्रव्य उन सबको एक नजरमें लें और उस दृष्टिसे देखा जाय सब द्रव्योंमें सामान्य गुण पाया जाता है तो उस दृष्टिसे देखने पर क्या सब द्रव्य एक-समान न नजर आयेंगे ? क्या वहां यह चेतन है यह अचेतन है, यह भेद विदित होगा। तो चेतन और अचेतन भी एक कल्पना है। अब इस आशयको पकड़ें, बहुत मर्मकी बात यहां कही जा रही है।

निष्पन्नयोगीकी दृष्टिका प्रकृष्ट व प्रकृष्टतर विकास—जैसे सब जीवों को एक चैतन्यस्वभावके नातेसे जब निरखा जा रहा है तो क्या उस दृष्टि से यह संसार है यह मुक्त है, यह भेद आता है ? नहीं आता। इसी प्रकार सब द्रव्योंसे सब द्रव्योंमें पाया जाने वाला जो सत्त्वगुण है केवल उस सत्त्व गुणकी दृष्टिसे निरखा जाय तो क्या वहां जीव चेतन है पुद्गल अचेतन है, यह भेद निरखा जा सकता है ? तो जैसे सब जीवोंमें चैतन्य गुणकी निगाहसे देखना एक व्यापक और उदार दृष्टि है ऐसे ही सब द्रव्यों को सब द्रव्योंमें साधारणतया पाये जाने वाले साधारण गुणकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह दृष्टिव्यापक है और उदार है। इस ही दृष्टिसे मूलमें एकांत नियम बनाकर जिसने पूर्ण वस्तुस्वरूप कायम किया है उसके मतमें यह सारा विश्व ब्रह्म रूप है। किसीका किसीसे कोई अन्तर नहीं है। सभी ब्रह्मस्वरूप हैं। इस ब्रह्मका अर्थ सर्व पदार्थोंमें साधारणतया पाये जाने वाला सत्त्व गुणरूप है। तो उस दृष्टिको कायम रखकर सब कुछ एक सद् ब्रह्म है, यह बात रंच गलत नहीं है, पर व्यवस्था और व्यवहार पुरुषार्थ आगेका काम यह सब केवल इस दृष्टि पर नहीं बन सकता है।

पदार्थकी साधारणासाधारणात्मकता—भैया ! सर्व प्रकार जान लें फिर जिस चाही दृष्टिको मुख्य करके विलास करें उसमें कोई हानि नहीं है, पर प्रत्येक वस्तुका स्वरूप तो समझमें आना चाहिए। यद्यपि सब पदार्थ जाति अपेक्षा एक हैं, सत् रूप हैं फिर भी वस्तु उसे कहते हैं जिसमें अर्थक्रिया होती हो अर्थात् परिणमन होता हो। तो अब इस लक्षणको घटित करलो। निज निज स्वरूपास्तित्वमें रहने वाले वस्तुको मना करके एक सद्ब्रह्मका ही एकांत हो तो भूखों मरना पड़ेगा। न दूध मिलेगा और न अन्न मिलेगा। कहां से दूध लावोगे ? सब सद् ब्रह्म ही हैं क्यों एक गायसे ही दूध निकालते हो सब सद्एक ब्रह्म हैं, तो व्यक्तिमें अर्थक्रिया होती है और जो अर्थक्रिया जितनेमें हो जिससे बाहर न हो वह एक द्रव्य कहलाता है। इस दृष्टिसे यह बात सर्वप्रथम मालूम पड़ेगी कि अनन्त जीव हैं, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्मद्रव्य व असंख्यात काल द्रव्य है, फिर अब व्यापक दृष्टि बनायें, उदार दृष्टि बनाएँ, यह सब आपकी प्रगति है। मूलतत्त्व को यदि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मना कर दिया तो तत्त्वकी खोजमें बन-बनमें भटकने जैसा श्रम होगा। चीज एक न मिलेगी।

अभ्यस्त और निष्पन्न साधना—जैसे प्राथमिक जनोंमें यह भेद रहता है कि वह मुक्त जीव है, यह संसार जीव है, यह पशु पक्षी है, यह मनुष्य है, पर निजतत्त्वका दृढ़तर अभ्यास करनेके लिए उस व्यक्ति को अर्थात् निष्पन्न योगमें फिर यह भेद नजर नहीं आता प्रत्युत सब जीव चिदानन्द स्वरूप दृष्ट होते हैं। अब इससे और आगे बढ़ो। अब जीव और पुद्गल इन दोनोंमें जो एक साधारण गुण है अस्तित्वगुण, उस दृष्टिसे जब निहारा जाता है तब वहां चेतन और अचेतनकी कल्पना नहीं ठहरती। उसकी अपेक्षा यह प्राथमिक अवस्था है। जहां यह जंच रहा हो कि पुद्गल तो अचेतन है और जीव चेतन है, पर इस प्राथमिक अवस्थासे आगे बढ़कर जहां साधारण धर्मदर्शनविषयक निष्पन्नयोग होता है वहां सब कुछ एक सत् रूप उसको ज्ञात है। चेतन और अचेतन का भेद भी वहां नहीं रहता है। यह साधनके एक परमसीमाकी बात कही जा रही है। अनिष्पन्न योगीको अर्थात् जो एक व्यापक उदार स्वभाव दृष्टिमें दृढ़ उपयोगी नहीं होता है उसको तो ये सब बातें कर्तव्यमें आती हैं पर वस्तुत्व के नातेसे पुद्गल और जीवको देखा जाय तो वहां यह पक्ष नहीं होना चाहिए कि यह मेरी जातिका है और यह दूसरी जातिका है। जब केवल सत्त्व दृष्टि है तब वहां पुद्गल और जीव ये दोनों भिन्न जातिके ज्ञात नहीं होते। अब उनकी एक ही जाति है। वह क्या? पदार्थत्व, सत्त्व।

निष्पन्नयोगीकी निर्विकल्पता— यह शरीर अचेतन है, पुद्गल कायरूप है और परमात्मतत्त्व सचेतन है, वह शुभ्र ज्ञायकस्वरूप है फिर भी अति निष्पन्न योगीको परमात्मतत्त्वमें रागभाव नहीं होता और अचेतन पुद्गलमें रोषभाव नहीं होता, ऐसे साधनाशील यतियोंकी उच्च शुद्ध दशा होती है। जैसे यहांसे कोई अमेरिका रूस कहीं जाय तो वह पुरुष जब भिण्डसे निकलकर ग्वालियर पहुंचा और उससे कोई पूछे कि आप कहांसे आ रहे? तो वह कहेगा कि भिण्ड जिलेसे आ रहे हैं और यहांके बाद जब कानपुर पहुंचा और वहां कोई पूछे कि आप कहांसे आ रहे हैं? तो वह कहेगा कि मध्यप्रदेश से आ रहे हैं, और मान लो यहांसे चलकर विदेश पहुंचे और वहां कोई पूछे तो वह कहेगा कि हम भारतसे आ रहे हैं। तो जैसे-जैसे उसका भ्रमण व्यापक बना तैसे-तैसे उसकी दृष्टि व्यापक हुई, इसी तरह यह पूछा जाय कि आप कौन हैं? तो कोई बतायेगा कि हम अमुक हैं, वैश्य हैं। कदाचित् और अधिक व्यापक दृष्टि बनायी तो कहेगा कि हम मनुष्य हैं, और अधिक व्यापक दृष्टि बनायी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो कहेगा कि हम जीव हैं। इससे भी और अधिक व्यापकता लायें जिसमें कि सब पदार्थ एक स्वरूपमें आ जायें तो कहेगा कि हम एक सत् पदार्थ हैं।

विलक्षणता न देखने पर रोष तोषका अनवकाश—भैया! जब कहा कि हम वैश्य हैं तो वैश्य वंशमें इसकी समानताकी बुद्धि रही अब उनमें किसी से रोष व तोष न करेंगे। जब यों कहा कि हम मनुष्य हैं तो मनुष्योंमें व्यक्तिगत इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होनेसे रोष व तोष नहीं करना और जब उसका यह भाव हुआ कि मैं जीव हूं तो जीवमें उपयोग लगाकर समझ रहा हो तो जीवमें किसी एकसे किसी दूसरे से रोष तोष न करेगा। और कभी इस विषयमें आए कि हम तो सत्‌रूप एक पदार्थ हैं तो सत्‌भूत जितने पदार्थ हैं उन पदार्थोंमें किसी एकमें रोष, करना किसी एकमें तोष करना ये बातें उससे न बनेंगी। तो इतनी अधिक व्यापक दृष्टिसे यह ज्ञानी सोच रहा है चूंकि जीव और पुद्‌गल इन दोनोंका यहां वर्णन है और दोनों द्रव्योंमें समान रूपसे पाये जाने वाले लक्षणोंकी दृष्टि लगायी सो भगवान में क्या तोष करना और पुद्‌गलमें क्या रोष करना, ये हैं एक सत्त्वकी दृष्टि रखने वाले निष्पंन्न योगकी बातें।

परविविक्त निजतत्त्वके अभिमुख होनेका उद्यम—जीव और पुद्‌गलका गुण और पर्यायोंसे वर्णन करनेके बाद ऐसी व्यापक दृष्टिमें उतर कर जहां जीव और पुद्‌गलमें भी कुछ कल्पना न की जा सके, उस दृष्टिमें लाकर अब आचार्यदेव इस पुद्‌गलद्रव्यके वर्णन को यहां समाप्त कर रहे हैं। कल्याणकी दृष्टिमें व्यावहारिकता की ओर कुछ कदम बढ़ायें, इस दृष्टिमें हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीव जुदा है और पुद्‌गल जुदा है, इतनी बात जानकर पुद्‌गलसे हटकर एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूपमें हमें उपयोगी होना चाहिए। मुझे करनेको काम यह है। जब इसमें निष्पन्न हो जायें तो फिर उस योगीके फिर और उत्कृष्ट दशा होती है कि उसकी दृष्टिमें जीव और पुद्‌गलमें भी भेद नहीं रहता। या तो मोही जीवको जीव और पुद्‌गलमें भेद नहीं है या अति उच्च निष्पन्न योगीको जीव और पुद्‌गलमें भेद नहीं है। इस प्रकार यहां इस पुद्‌गल द्रव्यका वर्णन समाप्त होता है।

अजीवाधिकारमें पुद्‌गलद्रव्यका वर्णन करके अब धर्मद्रव्य, अधर्म-द्रव्य और आकाशद्रव्यका एक गाथामें संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

गमणणिमित्तं धम्मधम्मं ठिदि जीवपुग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं जीवादीसव्वदव्वाणं ॥३०॥

धर्मद्रव्य—जो जीव और पुद्‌गल द्रव्यके गमनमें निमित्तभूत है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं और जो जीव पुद्‌गलके ठहरनेमें निमित्तभूत है उसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अधर्मद्रव्य कहते हैं तथा जो जीवादिक समस्त द्रव्योंकी अवगाहनाका हेतुभूत है उसे आकाश कहते हैं। यह धर्मद्रव्य समस्त लोकाकाशमें तिल में तैलकी तरह सर्वप्रदेशोंमें व्यापक है और जैसे बावड़ीका जल स्वयं नहीं चल रहा किन्तु वहां बसने वाले मछली और कछुवेके गमनका निमित्तभूत है, इस ही प्रकार यह धर्मद्रव्य स्वयं गति नहीं करता है फिर भी गतिक्रिया परिणत जीव पुद्गलके गमनमें निमित्तभूत है। यह धर्म द्रव्य कोई स्वभावगतिको ही कर उसमें निमित्तभूत है और कोई विभाव गतिके कार्य करे उसमें भी निमित्तभूत है यह अन्य पदार्थोंके स्वभाव और विभाव क्रियावोंके भेदसे कहीं दो प्रकारकी निमित्तता नहीं हो जाती है किन्तु गमन मात्रमें निमित्तभूत यह धर्मद्रव्य है।

जीवकी स्वभावगतिमें निमित्तता—जब यह जीव शुद्धोपयोगकी भावना के प्रसादसे अपने आपके शुद्ध स्वरूपमें अपना आलम्बन पुष्ट करता है तो उस शुद्ध परिणमनका निमित्त पाकर ये द्रव्यकर्म स्वयं अपनी परिणतिसे विनाशको प्राप्त होते हैं और उस समय इस जीवके समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं अथवा यों कहो ५ प्रकारके संसार द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन रूप का अभाव हो जाता है ऐसे शुद्ध विकाशके अवसरमें यह जीव एक समयमें ही यहांसे एकदम सीधा ऊपर चला जाता है जहां तक लोकाकाश है अथवा धर्मद्रव्य अस्तिकाय है। यह शुद्धआत्मा शुद्ध गतिसे तीनलोक के शिखर तक पहुंचता है।

शुद्धात्माका स्थायी स्थान—भैया! परमात्माका ध्रुव निवास ऊपर निवास ऊपर है, जहां तक लोक है वहां तक गमन करता है, अंतमें अवस्थित रह जाता है। यहां भी लोग जब परमात्माकी याद करते हैं तो अपना सिर ऊँचा ही तो उठाकर करते हैं किसीको नीचे दूककर भगवान की याद करता हुआ क्या देखा है? जब जो परमात्माकी याद करता है वह ऊपर ही निगाह करके देखता है। और फिर जैसे तूँबीमें मिट्टी भरी हो और वह पानीमें पड़ी हो तो पानीके नीचे नीचे ही रहा करती है। वह मिट्टी जब खिर जाती है तब तूँबी वहां नहीं ठहर पाती है जब मिट्टी गलकर बह गयी तो तूँबी स्वभावसे जलके ऊपर पहुंच जाती है। ऐसे ही द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मका मल दूर होने पर आत्मा लोकान्तमें जाता है।

जीवकी स्वभावगतिका साधन—इस स्वच्छ चित्चमत्कार मात्र आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मका मिट्टीका लेप पड़ा हुआ है। जिस बोझ से यह जीव संसारमें दबा है। इस जीवको कभी चेत आए, स्वरूपकी परख हो और इस ज्ञानस्वरूपकी भावना बनाएँ तो उसके प्रसादसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य कर्म, भावकर्म और नोकर्म ये मल दूर हो जाते हैं और उस समय यह जीव एक समयको लोकके अंत तक पहुंच जाता है। उस समय स्वभाव गति क्रियामें निमित्त यह धर्म द्रव्य है, वह स्थिति एक मुक्त अवस्थामें है। सर्व संकट जहां छूट गए, कर्म भी दूर हो गए, ऐसी मोक्षकी स्थिति इस प्रभुकी होती है।

मोहका नृत्य – भैया ! कैसा इस जगतमें मोहका नृत्य है कि यह जीव दुःखी भी होता जाता है और उसी मोह और रागको दृढ़ पकड़ता जाता है। जिसके द्वारा जो तकलीफ हुई उस ही का बढ़ावा दिया जा रहा है। जैसे लाल मिर्चका खाने वाला जो खूब लालमिर्च खानेका शौकीन हो वह सीसी करता जाता हैं, आंखोंसे आंसू भी गिरते जाते हैं फिर भी मांगता है कि और दो। आसक्ति है। ऐसे ही इस संसारके विषयोंके अनुरागमें, मोहमें, अपनानेमें इस जीवमें आकुलताएँ क्षोभ समाये जा रहे हैं और उन आकुलावोंको सहन न कर सकनेके कारण उन आकुलतावोंके कारणभूत उन ही विषयसाधनोंका ये जीव आह्वान करते जाते हैं। पर यह बात ध्रुव सत्य है कि संसारमें सर्वत्र क्लेश ही क्लेश हैं। इनसे यदि बचना है तो अपने आपके सहज स्वभावका परिचय करना ही होगा और यही स्वरूपाचरण जो आत्मदर्शनके अवसरमें प्राप्त हुआ है यही वृद्धिगत होकर परमात्मस्वरूप तक पहुंचा देता है।

शुद्धात्माकी अनुश्रेणि ऊर्ध्वगति—सिद्ध प्रभु ६ अपक्रमसे अब रहित हैं। जहांसे यह मनुष्य मुक्त हुआ है उसही के ठीक सीधमें आकाशका एक प्रदेश भी टेढ़ा नहीं जाता है किन्तु एकदम सीधमें यह शुद्धात्मा गमन करता है। यह संसारी जीव मरनेके बाद ६ ओरसे गमन किया करता है। पूरबसे पश्चिमको, पश्चिमसे पूरबको, पश्चिमसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण, ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर। इस तरह ६ अपक्रमणोंमें नवीन देह धारण करनेके लिये गमन किया करता है और जीवनमें तो यह जीव इतनी भी सीध नहीं रखता है अर्थात् गोल चल दे, तिरछा चल दे, जैसा चाहे चल दे किन्तु सिद्ध भगवान कर्मोंसे मुक्त होते ही एकदम सीधे ऋजुगतिसे मोक्ष निवासमें पहुंच जाते हैं।

प्रभुताकी व्यक्तिकी व पहिलेकी स्थितियां— मुक्तिसे पहिले भगवान अयोग केवली रहते हैं और इससे पहिले सयोग केवली हुआ करते हैं। इससे पहिले साधनाकी अवस्थाएँ हुआ करती हैं और उन साधनोंकी अवस्थावोंसे पहिले यह प्रमाद अवस्थामें साधु रहता है, उससे पहिले कुछ भी हो अविरत सम्यग्दृष्टि रहे या देशवती श्रावक रहे स० संभव है। तो यह जीव अभ्यासबलसे सबसे पहिले जितेन्द्र बनता है, यह बहुत बड़ी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधना है अपनी इन्द्रियोंपर विजय किए रहना। पंचेन्द्रियके विषयोंमें यह समस्त लोक अपने मार्गसे च्युत होकर भटक रहा है। उन इन्द्रियों पर विजय करना सबसे पहिली फतह है।

रसनेन्द्रियविजय—भैया ! जरा कहने में तो आसान लगता है कि क्या बात है, न खायें रसीले, चटपटे भोजन आखिर गलेके नीचे उतरनेके बाद घाटी नीचे माटी की हालत हो जाती है। एक सेकेण्डका स्वाद न आवे तो क्या बिगड़ता है ? एक सेकेण्डके उस स्वादकी प्रबलतामें कितने ही रोग कितने ही दोष ये अपने आपमें मोल ले लेते हैं। सीधा सात्विक खावो और रोगसे बचे रहो तो कौनसी अटक पड़ती है ? स्वादिष्ट चाय पी ली तो इसमें कौनसा लाभ मिलता है ? हां नहीं किया जायेगा पर ज्यों ही विषय साधन समक्ष आते हैं तो यह मोही जीव उनको भोगे बिना रह नहीं पाता है। कितना व्यामोह है संसारी प्राणीका।

चक्षुरिन्द्रियविजय—एक रसनाइन्द्रिय की ही बात नहीं है—जो बहुत दूर की इन्द्रिय है, जिसका विषयोंसे सम्बन्ध भी नहीं बनता ऐसे चक्षुरिन्द्रिय विषयका भोग क्या इसके कम रोगकी बात है। अरे न देखें बाहरमें किसी चीज को तो कौनसी अटक हो जाती है, कौनसा घाटा पड़ जाता है, पर सुन्दर रूपकी बात तो दूर रहो, कोई चीज सामने से निकल जाय, चाहे सड़कसे रद्दी ठेला ही निकलने लगे, तो आंखें वहां पहुंच ही जाती हैं। कैसी यह व्यर्थकी व्याधि लगी हुई है। न देखा रूप, न देखा बाहर कुछ तो आत्मामें कौनसी हानि होती है। पर नहीं रहा जाता है। जबकि देखो रसना और नेत्र इन दोनोंको वशमें करने के लिए प्राकृतिक ढक्कन लगे हुए हैं। मुँहमें दो ओठोंका ढक्कन लगा है, इनको बंद कर लिया तो इस रसना विषयकका ढक्कन लग गया। इसी तरह नेत्र के दोनों ढक्कन बंद कर लिया तो सारी आफत मिट गयी। मगर मोहके रोगमें यह जीव इन ढक्कनोंको बंद नहीं कर सकता है।

शेषेन्द्रियविजय—और इन दो इन्द्रियोंकी ही बात नहीं है, कान भी कैसा खड़े रहा करते हैं, नाक भी कैसा सदा तैयार रहा करती है गंध लेनेके लिए। इसका द्वार तो कभी बंद ही नहीं होता। नाकका द्वार सदा खुला रहता है। कानका द्वार भी सदा खुला रहता है। खूब शब्द सुनते स्पर्शन कामभावका विषय तो मुग्धतापूर्ण है। तो ऐसे इन विषयोंके वशमें होकर यह जीव अपनी बरबादी किए जा रहा है। उनसे बचनेका जिसने यत्न किया है वे जितेन्द्रिय हो जाते हैं।

इन्द्रियविजय धर्ममार्गका प्रथम कदम—धर्म मार्गमें सबसे पहिले जो कदम उठता है चारित्रकेरूपमें वह इन्द्रिय विजयताका उठता है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधारण लोग तकके भी धर्मकी बात मनमें आती है तो भोजनके त्यागकी बात पहिले कर ली जाती है। अमुक रस आज नहीं खाना है, आज एक बार ही खाना है या इतना-इतना त्याग सहित खाना है। सबसे पहिले तो भोजन पर ही दृष्टि जाती है। धर्ममार्गमें और बात भी देखो जब तक जितेन्द्रियता नहीं प्रकट होती है तब तक परिणामोंमें विषय और कषायका अभाव नहीं हो सकता। सबसे पहिले इन्द्रिय विषय पर विजय किया जाता है तत्पश्चात् कषायोंके दूर करनेमें सफलता होती है। और जब कषाय दूर हो जायें तब फिर यह निष्कषाय होनेके बाद सयोगकेवली भगवान बनता है।

अयोगकेवली गुणस्थानके पश्चात् जीवकी स्वभावगति—वीतराग आत्मा भगवान हो गया। शरीर बना हुआ है, विहार चल रहा है, दिव्य ध्वनि भी होती है, यहांके लोगोंके उनका दर्शन होता है। ऐसा सयोगकेवली भगवान बहुत दिनोंके पश्चात् जब उनका संसार छूटता केवल अन्तमुहूर्त मात्र शेष रह जाता है तब वह अयोगकेवली हो जाता है। उस गुणस्थान का समय ५ ह्रस्व अक्षर बोलनेके बराबर है। स्वरोंमें ह्रस्व ५ ही होते हैं। इन ह्रस्व अक्षरोंको जल्दी बोलनेमें जितना समय लगता है उतने समयमें वह अयोगकेवली भगवान गुण स्थानको तजकर, शरीरसे अलग होकर लोकके शिखर पर विराजमान् हो जाता है। यहां भगवानके स्वभावगति की क्रियाका परिणमन है। उनका पंचम गतिको जानेमें अर्थात् सिद्ध होनेमें जो स्वभाव गमन होता है उस गमनका हेतुभूत जो द्रव्य है उसका नाम है धर्मद्रव्य।

विभावगतिके निमित्तका विवरण—संसारी जीवोंके विभाव गति क्रिया होती है जो कि मरनेके बाद उपक्रम करके सहित होता है उस क्रियाका भी हेतुभूत धर्मद्रव्य है और जीवन अवस्थामें कैसा भी यह गमन कर, तिरछा, टेढ़ा गोल ऐसे विषम गमनका भी कारणभूत यह धर्मद्रव्य है, जैसे पानी पनालियोंके गमनमें कारण होता है इस ही प्रकार जीव और पुद्गलके गमनमें कारण धर्मद्रव्य होता है। यह धर्मद्रव्य रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित है, अमूर्त है। इसमें ८ प्रकारका न स्पर्श है, न ५ प्रकारका वर्ण है, न ५ प्रकारका रस है और न दोनों प्रकारका गंध है। आकाशवत् अमूर्त सूक्ष्म किन्तु लोकाकाशप्रमाण व्यापक यह धर्मद्रव्य है, यह अपने आपके द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्वगुणके कारण अपने आपमें निरन्तर परिणमता रहता है। उसका आकार वही है जो लोकका आकार है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य व अलोकाकाशके आकारकी समानता—लोकका आकार इसी प्रकारका बताया गया है कि जैसे मानों ७ पुरुष एकसे कदके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हों और एकके पीछे एक इस तरह सातों खड़े हो जायें दोनों पैरोंको पसार कर और हाथोंको कमर पर रखकर तो ऐसी स्थितिमें एक सिर भागको तो न सोचा जाय और बाकी जो कुछ आकार है वह आकार धर्मद्रव्यका है, लोकाकाशका है, अधर्मद्रव्यका है।

धर्मद्रव्यके गुणका दिग्दर्शन—इस धर्म द्रव्यमें शुद्ध गुण होते हैं और शुद्ध पर्याय होती है। यह शाश्वत है, शुद्ध है, और उसकी पर्याय भी शुद्ध है। धर्मद्रव्यका गुण क्या है इस बातको समझनेका अपने पास कोई उपाय नहीं है, किन्तु युक्तिसे अवगत व आगमगम्य पदार्थ है यह धर्मद्रव्य जीव पुद्गलके गमनमें कारण होता है, यह तो आपेक्षिक कथन है। किसी द्रव्यका गुण किसी दूसरे द्रव्यमें परिणमनकी अपेक्षा रखकर नहीं हुआ करता है। तो धर्मद्रव्यका यह गतिहेतुत्व गुण जो जीव और पुद्गलकी गति परिणतिकी अपेक्षा रखता है, वह अविभागप्रतिच्छेदात्मक स्वभाव गुण हो, ऐसा नहीं है। वह अपेक्षित धर्म है। जैसे कोई अंगुली छोटी है कोई बड़ी है, कोई मजबूत है, तो यह अपेक्षित है। कहीं एक ही अंगुली को देखकर छोटी बड़ी तो नहीं कहा जा सकता है ऐसे ही मात्र धर्मद्रव्यको ज्ञानमें लेकर उसका गुण खोजें तो गुण नहीं बताया जा सकता है। धर्म द्रव्यका यह गतिहेतुत्वरूप लक्षण औपचारिक है, धर्मद्रव्य किस बातमें निमित्त होता है, ऐसा बतानेके लिए यह एक कथन है। वस्तुतः धर्मद्रव्य अपने द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्वगुणके कारण निरन्तर षड्गुणहानि वृद्धि रूपमें अपने आपमें परिणत है, किन्तु शुद्ध द्रव्य होनेके कारण भाव, विभाव, प्रभाव विदित नहीं होता है।

धर्मद्रव्यका गुण व पर्यायके रूपमें वर्णन—गुण सहभावी हुआ करता है और पर्याय क्रमभावी हुआ करते हैं। धर्मद्रव्यमें एक साथ जो कुछ उसमें पाये जाते हैं वे सब धर्मद्रव्यके गुण हैं। साधारण गुणोंकी तो खबर है ही। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशित्व, प्रमेयत्व, ये ६ गुण हैं। इन ६ गुणोंके आधारभूत ये धर्मद्रव्य हैं, पर उसमें कोई विशेष गुण भी अवश्य है। कोई द्रव्य ऐसा नहीं है कि जिसमें केवल साधारण गुण तो हो और विशेष गुण कोई न हो। यदि विशेषगुण कोई नहीं है तो वह द्रव्य ही नहीं ठहर सकता है और यदि साधारण गुण नहीं है तो विशेषगुण किसके आधार पर विराजें? सो साधारण गुण न हो या असाधारण गुण न हो तो वस्तुका सर्वथा अभाव होनेका प्रसंग आता है। है कोई धर्मद्रव्यमें असाधारण गुण। गुणके विवरणके प्रसंगमें जीव और पुद्गलका गतिहेतुत्व बना करता है। ऐसे जीव और पुद्गलके गमनमें कारणभूत धर्मद्रव्यका वर्णन किया गया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अधर्मद्रव्यका विवरण—अधर्मद्रव्यका भी यही हाल समझो। जो कुछ धर्मद्रव्यके विषयमें बताया गया है वही सब कुछ विशेषण अधर्मद्रव्यमें है। यहां केवल साधारण कार्यको निमित्ततामें ही अन्तर है कि धर्मद्रव्य तो जीव पुद्गलकी गतिमें कारण है किन्तु धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल की स्थितिमें कारण है विशेष गुणका अन्तर आ गया, उसको इस विशेष गुणकी मुख्यता न करना तो धर्म अधर्म परस्परमें एक समक्ष आता है वहां यह विश्लेषण करनेकी गुञ्जाइश नहीं रहती है। यों इस प्रकरणमें धर्मद्रव्य और धर्मद्रव्यका वर्णन किया गया है। जैसे धर्मास्तिकायके गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध होती है, ऐसे ही अधर्मद्रव्य भी गुणपर्यायसे शुद्ध रहता है। इन अमूर्त द्रव्योंके गुण स्पष्ट नहीं जान सकते, विशेष अपेक्षित गुणके द्वारसे धर्म और अधर्मका मान कर सकते हैं।

आकाशका स्वरूप—आकाशद्रव्यका विशेष गुण है द्रव्योंको अवगाह देना, यह सब आपेक्षिक कथन चल रहा है। आकाशद्रव्य किसीको अवगाह देता फिरे, ऐसी उसकी कोई परिणति नहीं है, वह तो अपने अगुरुलघुत्व गुणके परिणमनसे परिणमता हुआ एक द्रव्य है पर उसके स्थानमें पदार्थ रहता है, इस कारण वह अवगाहका निमित्त है और उसे अवगाहनका हेतु कहा गया है। अवगाहन आदिमें समर्थ तो सभी द्रव्य हैं परमाणुकी जगह दूसरा परमाणु रह जाता है जीवके स्थानमें अनेक पुद्गल पड़े हुए हैं। तो इस पदार्थमें भी अपने आपमें दूसरोंको समा लेने की सामर्थ्य है पर ऐसा होते हुए भी स्थान तो आकाशमें ही हैं इसलिए अवगाहन का हेतु आकाशको कहा गया है।

लोकाकाश और अलोकाकाश—धर्म और अधर्मके शेष गुण आकाश के शेष गुणोंमें सदृश हैं अथवा जो साधारण गुण धर्म अधर्मका है वह ही आकाशमें है, जो आकाशमें है वह ही धर्म अधर्ममें है। लोकाकाश धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य एक समानका परिमाण है। पर अलोकाकाश इससे अधिक है अनन्तगुणा। आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। आकाशके दो भेद नहीं होते हैं किन्तु आकाशके जितने प्रदेशोंमें समस्त द्रव्य ठहरते हैं उतनेका नाम लोकाकाश है और जहां केवल आकाश ही आकाश है उसका नाम अलोकाकाश है।

सर्वज्ञेयोंके जाननेका प्रयोजन—भैया! यह सब कुछ जान लो। जो गतिका कारण है वह धर्मद्रव्य है और जो स्थितिका कारण है वह अधर्म द्रव्य है। समस्त द्रव्योंको स्थान देनेमें प्रवीण आकाशद्रव्य है। इन सबको भली प्रकार द्रव्य रूपसे जान लो और जानकर कहीं उनमें प्रवेश नहीं करना है, उनमें उपयोग नहीं फँसाना है। जान लो ज्ञेयतत्त्व न जाना तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक वह अज्ञान अंधेरा है। ऐसी स्थितिमें ज्ञान प्रगतिका अवसर नहीं होता है।

अनात्मतत्त्वके जाननेकी आवश्यकता--ये सब पदार्थ तो अभी सम्बन्धित हैं, यह मैं आत्मा हूं। इसमें क्यों मलिनता है, क्यों इसकी दुर्दशा है? उसमें निमित्त है उपाधि, उस उपाधिका वर्णन किया जाना चाहिए। ऐसे पुद्गलोंका वर्णन आवश्यक है। उपाधिका निमित्त पाकर बाह्यपदार्थोंका आश्रय बनाकर ये रागद्वेषादिक हुआ करते हैं। सो बाह्य विषयोंका भी बोध कराना चाहिए। सो ऐसे पुद्गलोंका भी वर्णन आयेगा। यह जीव द्रव्य डोलता है, गमन करता है, कहां तक गमन करता है? क्यों गमन करता है, अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, उनका समाधान मिलता है धर्मद्रव्यका वर्णन होनेसे। यह चलकर ठहरता भी है और कहीं आखिरी सीमामें ठहर जाता है ऐसा समझनेके लिए अधर्मद्रव्यका वर्णन है और आकाशद्रव्य तो अमूर्त होता हुआ भी, न दिखता हुआ भी लोगोंको परिचयमें हो रहा है। यह सब आकाश ही तो है, जहां पोल है, जहां हम रहते हैं वह आकाश है। हम कहां रहते हैं, उसका समाधान करनेको आकाशद्रव्यका वर्णन जानना। वस्तुतः प्रत्येक पदार्थ अपनी ही परिणति से परिणमता है और अपने ही प्रदेशमें उसका अवधान है। फिर भी बाह्य बात, विभावोंकी बात बाह्य झटक ये सब जाननेसे ओझल नहीं किए जाते। इस कारण सभी द्रव्योंका वर्णन जानना आवश्यक हो गया है।

परसे अलगाव व निजमें लगावका यत्न—जान लिया, पर जान करके मोक्षार्थी पुरुष सदा निजतत्त्वमें ही प्रवेश करे। जाननेकी बातें जाननेकी जगह हैं, पर करें क्या, कहां प्रवेश पायें? यह आत्महितके जाननेके लिए एक अनिवार्य बात है. हम अपने आपके जाननेमें रहते हैं तब आकुलता नहीं होती, क्योंकि आकुलताका निर्माण किसी परविषयका आश्रय करके होता है। कोई मनुष्य किसी परको तो उपयोगमें न रखे और आकुलता करले, ऐसा नहीं हो सकता। कोई परविषय लक्ष्यमें रहता है. उपयोगमें रहना है तब ही आकुलता मच सकती है तो निराकुल होनेके लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परमें न फँसें और केवल निज शुद्ध ज्ञायक स्वरूपकी दृष्टि बनाए रहें।

आनन्दप्राप्तिका साधनभूत ज्ञान—आनन्द पानेका कितना सुगम उपाय है कि बाहरसे उपयोगनेत्रको बंद किया जाय यह मैं ज्ञान नहीं, स्वभाव मात्र स्वयं तो हूं ऐसी दृष्टि बनाए तो यह शीघ्र शांति प्राप्त कर लेता है। कितना व्यर्थका यह ऊधम है कि न परसे इस मुझमें कुछ आना है और न मुझसे किसी परमें कुछ जाना है, कोई वास्ता नहीं है। मैं मैं हूं, पर पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, फिर भी कितना बोझ इस जीवने अपने पर लादा है कि बोझकी वजह से यह कभी विश्राम नहीं ले पाता। यत्र तत्र दौड़ लगाये चला जाता है। बिना कारण यह अपने आपमें संक्लेश बनाए रहता है। सब विवरणोंका अर्थ यह है कि न कुछ परसे हममें परिणति आती है और न हमसे परमें कुछ जाता है। ये अपने घरके हैं, हम अपने घरके हैं, किन्तु परदृष्टि करके अपने आपमें कल्पनाएँ बनाकर यह दु:खी होता रहता है। यदि सब द्रव्यों को जानकर प्रवेश करना है तो अपने निजतत्त्वमें प्रवेश करना है। परका जानना परसे निवृत्त होनेके लिए किया जा रहा है। परमें फँसनेके लिए परका जानना नहीं किया जाता है। यहां तक अजीवाधिकारमें पुद्‌गल, धर्म, अधर्मका, वर्णन किया, अब शेष रहा जो कालद्रव्य है उसका वर्णन अगली गाथामें किया जा रहा है।

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलि हदसंठाणप्पमाणं तु ॥३१॥

कालकी परमार्थ पर्याय व अल्पतम व्यवहारपर्याय—इस गाथामें व्यवहार कालका स्वरूप कहा है। कालद्रव्यकी पर्यायोंका स्वरूप कहा जा रहा है। कालद्रव्यकी पर्याय वस्तुत: एक समय है। अब उन समयोंका संचय करके अर्थात् ज्ञानमें बहुतसे समयोंके समूहको जोड़कर फिर अन्य भेद किया जाता है। कालके दो भेद बताए जा रहे हैं—समय और अवली। यद्यपि भेद बहुतसे हो जाते हैं पर परमार्थसे तो कालका भेद समय है और व्यवहारमें जब अपन चलें, व्यवहार कालको जब उपयोगात्मक जाना तो उन सबमें सबसे छोटा काल है आवली। एक स्वतंत्ररूप और एक व्यावहारिक रूप, इस तरहसे कालके ये दो भेद कहे गये हैं।

कालका मूल व्याहारिक भेद—आंखकी पलक तुरन्त बंद करनेमें और बंद करके तुरन्त उठा देनेमें जितना समय लगता है उसे बहुत छोटा समय कहेंगे, पर इतने समयमें अनगिनती आवलियां हो जाती हैं। उनमें से एक आवलीको व्यवहार कालका रूप दिया है। यों काल द्रव्यमें परिणमन के दो प्रकार हैं—समय और आवली अथवा एक दृष्टिसे काल ३ प्रकारका है भूत काल, वर्तमान काल और भविष्यत् काल। इन तीनोंमें समस्त काल आ गए। वर्तमान काल तो वर्तमान हुआ और सारा व्यतीत हुआ काल भूत काल हुआ और आगे होने वाले समस्त भविष्यत् अतीत कालसे भी बड़ा है, हैं दोनों असीम।

अतीतकालका प्रमाण—कालके वर्णनमें यह बतला रहे हैं कि अतीत काल है कितना? इसको आचार्य देवने बड़ी कलापूर्ण ढंगसे बताया है कि जितने संस्थान हुए हैं आज जो सिद्ध हुए हैं उनके जितने जन्म हुए हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जितने शरीर मिले हैं उन संस्थानोंमें असंख्यात आवलियोंका गुणा कर दिया जाय, जितना लब्ध हो उतना काल व्यतीत हो गया। इसका भाव यह है कि आज जो सिद्ध हैं उन्होंने जितने जन्म पाये हैं, सो एक जन्म असंख्यात आवलियोंका तो होता ही है, ऐसी असंख्यात आवलियोंके समयका गुणा कर दिया जाय तो अतीत काल है। कितनी उत्तम पद्धतिसे अतीत कालका वर्णन है ?

समयपर्यायका स्वरूप—इनमें से अब समय की व्याख्या की जा रही है कि आकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु ठहरता है, एक परमाणु मंदगतिसे गमन करके एक प्रदेशको उल्लंघन करदे जितने क्षणमें उसको एक समय कहते हैं। परमाणुकी तीव्र गति हो तो वह एक समयमें १४ राजू गमन कर जाता है। इसी कारण परमाणुकी मंद गतिसे समयका लक्षण बन सकता है और एक परमाणु जिस प्रदेश पर है उसके पासके प्रदेशपर पहुंच जाय जितने क्षणमें, उसका नाम है एक समय। वैसे भी इससे अनुमान करो कि जिसे हम वर्ष कहते हैं उसका आधा तो कुछ हो सकता है। वे हैं ६ महीने और जिसे ६ महीने कहते हैं उसका भी आधा कुछ हो सकता है ना, उसे कहते हैं ३ महीने। जिसे हम दिन कहते हैं उसका भी तो आधा कुछ है। जिसको हम मिनट कहते हैं, उसका भी तो आधा कुछ है। इसी तरह सेकेण्डका भी कुछ हिस्सा होता है ना। इसी तरह हिस्सा करते हुए वह अन्तिम हिस्सा जिसका हिस्सा न बन सके उस का नाम है एक समय। यह समय व्यवहारकाल अर्थात् परमार्थभूत जो कालद्रव्य है उस कालद्रव्यका एक शुद्ध परिणमन है।

व्यवहारकालका विस्तार--ऐसे-ऐसे असंख्यात समय मिल जायें तो उनसे बनता है फिर निमिष। निमिष कहते हैं नेत्रके जो पुट हैं उनमें पलक छू जाय और हट जाय, इतने में जितना समय व्यतीत होता है उतने को कहते हैं निमिष और ८ निमिष बराबर होते हैं एक काष्ठाके और १६ काष्ठा बराबर होते हैं एक कलाके और ३२ कला बराबर होते हैं एक घड़ीके और ६० घड़ी बराबर होते हैं एक दिनके और ३० दिनका होता है एक महीना और दो माहका होता है एक ऋतु, तीन ऋतुवोंका होता है एक अयन, जिसे कहते हैं दक्षिणायन, उत्तरायण। आजकल समय है उत्तरायणका और दो अयनका होता है एक वर्ष। इस तरह और भी बात आगे लगाते जावो १२ वर्षका होता है एक युग और भी आगे चलते जावो। यों व्यवहार समय अपनी कल्पनासे समयोंके संचयसे अनेक प्रकारके होते हैं।

अपनी अतीतकी झांकी--भैया ! बतावो अब कितना समय व्यतीत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर डाला। अनन्त काल व्यतीत किया। किन-किन परिस्थितियोंमें ? ऐसी ही संसारकी दशावोंमें व्यतीत किया है। अनन्त काल तो हमारा निगोदमें गया। निगोद नाम कहने से तो आया वनस्पतिका भेद, साधारण वनस्पति पर वह हरी नहीं है। उसका शरीर भी व्यवहारके लायक नहीं है। वे निगोद कहीं आश्रयमें रहते हैं, और अनन्ते निगोदिया जीव निरालम्ब रहते हैं। जो आश्रयमें रहते हैं और जिस आश्रयमें रहते हैं उन सबका मिलकर नाम है सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और जो निराश्रय हैं उनका नाम है सूक्ष्म निगोद अर्थात् साधारण वनस्पति। इन सब निगोदोंकी आयु १ श्वासके १८वां भाग प्रमाण मानी जाती है, पुरुषकी नाड़ी एक बार उचकनेमें जितना समय लगाये उतने समयका नाम श्वांस है। नाड़ीके एक बार चलनेमें जितना समय लगता है उतनेमें १८ बार मर जाते हैं वे निगोद जीव। ऐसे जन्म मरणके महाक्लेश पाते हुए निगोदभवमें अनन्तकाल व्यतीत हुआ।

स्थावरोंमें परिभ्रमण—कभी निगोदसे निकले और हो गए अन्य स्थावर जीव—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और पेड़ तो इसमें भी हमने क्या हित किया ? असहाय पृथ्वी आदिक स्थावर अपना किसी भी प्रकार बचाव नहीं कर सकते। और वे खुद तड़पकर अपनी जगह भी छोड़ दें वे इतना भी नहीं कर सकते हैं। पृथ्वीको खोदते हैं, लो कहीं आग जला दी जाती है। कितनी ही प्रकारसे पृथ्वीका हनन हो रहा है। जलको गरम कर डाला आग पर जला दिया, आदिक रूपोंसे वहां भी जलका घात हुआ। अग्निको बुझा दिया और विशेष करके यह परम्परा न जाने किस बुद्धिमान्के जमानेसे चली कि साधुको भोजन बनाया तो कोयला बुझा दिया, आग पर पानी डाल दिया और चूल्हेको साफ कर दिया। साधु हैरान हो जाते हैं, न जाने आकाशमें भोजन बनाया या चूल्हेमें बनाया। सीधी बात है कि गृहस्थोंके यहां भोजन बन रहा है, साधुको पड़गाह लिया, पहुंच गए जितनी देर साधुको आहार देनेका समय है उतनी देर नया भोजन न बनाये जानेकी बात थी, मगर इतनी अप्राकृतिकता हो गयी, साधु की तो कोई कष्ट ही नहीं है। कष्ट है तो गृहस्थोंको घंटा भर पहिले आग बुझा दिया और द्वार पर बाट हेरते रहे, फिर घरकी रोटी बनाने को आग जलायेंगे। तो आप समझो कि आगका बुझाना विवेकी गृहस्थ तो नहीं करते। तो अनेक प्रकारसे आगको भी कष्ट दिया। वायुको रबड़में रोक दिया अथवा अनेक प्राकृतिक रूपोंसे वायुका आघात किया। पेड़ पौधों की तो बात ही कौन कहे हैं। चले जा रहे हैं, तोड़ दिया, काट दिया, छेद दिया, भेद दिया, अनेक प्रकारसे वनस्पतिके भवमें क्लेश भोगे।

त्रस भवके क्लेश—कदाचित् स्थावरोंसे निकले तो दो इन्द्रिय लट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदि बना, तीन इन्द्रिय बना, चार इन्द्रिय बना। कौन मनुष्य इनकी परवाह करता है? कितने ही लोग तो जमीन पर चलते हुए कीड़ोंपर अपना मन बहलानेके लिए नाल गड़े जूतों रगड़ देते हैं, दिल बहल गया। किन्तु कभी पंचइन्द्रिय हुआ तो वहां भी बड़े कष्ट सहे। किन्हीं हिंसक जानवरोंने खा लिया। और चूहे हुए तो बिल्लीने पकड़ लिया और कुत्ता बिल्लीसे बच जाय तो अनेक बिना पूँछके कुत्ता बिल्ली भी हैं। पकड़ा, डोरासे बांध लिया और खेल करना हो तो नीचे आग जला दिया, कितना कष्ट है? ये सब कष्ट दूसरेके नहीं हैं, हमारे ही समान वे भी जीव हैं, अथवा हम भी ऐसी पर्यायोंमें हुए थे। चिड़िया, बैल, गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा सभीके क्लेश देखते जावो। इन पशुवोंको लोग तब तक लाड़ प्यारसे पालते हैं जब तक इनसे खूब पैसा पैदा होता है, आय होती है। वे जानवर बूढ़े हो जायें, आय न हो तो उन्हें कौन पूछेगा? काम तो करते नहीं, सो उन्हें कोई नहीं पूछता है। देव नारकी हुए तो दुःखी रहे।

मनुष्यभवका लाभ—भैया! कितने प्रकारके हम आपने अनेक कष्ट भोगे और आज हम आप मनुष्य बने, एक सभ्य भव मिला, ढंगसे बैठ सकते हैं, अनेक प्रकारसे भोजन बनाकर खाते हैं, पलंगोंको बिछाकर सोते हैं, अनेक वाहनोंका उपयोग करते हैं, अपनी बात दूसरोंको सुना सकते हैं, दूसरोंकी बातको हम समझ सकते हैं, पशु पक्षी आदि सभी तिर्यञ्चों की अपेक्षा हम आपका कितना बड़ा विकास है और छोटी-छोटी बातें क्या बताएँ, उनकी पीठ पर कहीं मक्खी बैठ जाय तो उड़ानेका साधन भी पूँछ है। उसीसे उड़ा सकते हैं पर आपके तो दसों उपाय हैं। कपड़ा पहिन लिया, हाथसे उड़ा दिया। मनुष्यकी नाक सूख जाय तो अंगुली भीतर डालकर नाक साफ करलें पर पशु बेचारे किस तरहसे अपनी नाक साफ करें? अच्छी प्रकारसे देखलो—परमार्थ ज्ञानसे, सभी दृष्टियोंमें हम आप कितने महान् भवको प्राप्त हुए हैं? ऐसे भवको पाकर भी वही विषय कषाय आहार, नींद, भय, मैथुन आदि विषयोंमें ही रहे और वही ममता रही तो बतावो मनुष्यभव पानेका लाभ क्या लूटा?

विषयकषायोंका फल—विषय कषायोंके फलमें वही तो होगा ना कि जहां से उठे वहीं गिरे। तिर्यञ्चमें, निगोदमें। जैसे कहते हैं कि एक साधुके पास चूहा था सो वह चूहा बिल्लीसे डरा। तो साधुने चूहेको आशीर्वाद दिया कि तू बिल्ली हो जा, सो वह बिल्ली बन गया। बिल्ली कुत्तेसे डरी सो कहा कि तू कुत्ता बन जा, सो वह कुत्ता बन गया। कुत्ता शेरसे डरा सो साधुने कहा कि तू शेर बन जा सो वह शेर बन गया। शेरको चाहिए था भोजन सो शेरने सोचा कि साधु महाराजको ही क्यों न पहिले खायें, इनसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अच्छा मांस और किसका होगा ? सो वह शेर साधुपर झपटा, सो साधुने कहा कि तू पुनः चूहा बन जा। सो वह पुनः चूहा बन गया। यों ही हम आप निगोद आदिसे निकल कर मनुष्यभवमें आए और मनुष्य होकर इस ही आत्मदेवपर हमला करने को तैयार होते हैं तो इस आत्मदेवको यही भर तो अन्तरमें कहना है कि तू पुनः निगोद बन जा या तिर्यञ्च बन जा। तो इस अनन्त कालमें आज एक दुर्लभ शरीर पाया है, उसे यों ही खो दिया तो यह तो महामूर्खताकी बात है। कभी तो यह उद्यम हो कि हम बहुत बार ऐसी स्थिति लाएँ कि परसे उपयोग हटाकर इस ज्ञानानन्द स्वरूप को निरखा करें तो इस करतूतसे हमारा जन्म सफल होगा।

सोदाहरण अतीतकालका विवरण—अतीत काल कितना है ? अतीत कालका प्रमाण बतला रहे हैं कायदे मुताबिक कि जो शुद्ध हुए हैं उनकी सिद्ध पर्याय बननेसे पहिले जितने संसार अवस्थामें उनके संस्थान हुए हैं, जन्म हुए हैं, शरीर मिले हैं उनसे असंख्य आवलियोंका गुणा करके उतने बराबर काल व्यतीत हुआ। कोई पूछे कि १०० कितने होते हैं ? अरे १०० के आधे करलें और उतने ही और मिला दें तो इतने १०० होते हैं कायदे मुताबिक उत्तर ठीक हो गया ना। केवल ज्ञानके कितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंमें कितनी गिनती है कि सब जीव सब पुद्गल अतीत काल और आकाशके प्रदेश और और सब बहुत बातें जितनी होती हों, सब उससे भी केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं अर्थात् ऐसे-ऐसे अनन्त आकाश काल जीव पुद्गल होते तो उन सबको भी केवल ज्ञान जानता है। तो केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद में से ये आकाश, जीव, पुद्गल, ये सब प्रदेश परमाणु घटा दें। जितने बचे उतनेमें फिर उतने ही मिला दें तो पूरा हो जायेगा। चीज कायदेमें तो समझमें आ गयी होगी।

अतीतकालसे भविष्यत्कालकी वृहत्ता—इसी तरह पुनः लगावो, अतीत काल कितना हुआ ? जो सिद्ध हुए हैं उन्होंने संसार अवस्थामें जितने जन्म पाये हैं उनमें असंख्य आवलियोंका गुणा करदें, जितना काल लब्ध हो उतना व्यतीत हो गया। समझमें तो आ गया पर कितना व्यतीत हुआ यह पकड़में नहीं आया। पकड़में कैसे आए ? वह तो अनन्त काल है और अनागत काल अथवा भविष्यका काल कितना है वह भी इतना ही है कि भविष्यमें जो सिद्ध होंगे उसके बाद भी जितना काल व्यतीत हुआ उससे भी अधिक काल। देखो मजेकी बात कि आज पूछ रहे हैं कि अतीतकाल कितना है और भविष्यकाल कितना है। तो यही बतावोगे कि अतीतकाल अनन्त है और भविष्यकाल अनन्त है। फिर भी दोनोंमें बड़ा कौन है ? भविष्यका काल बड़ा बताया है। दिखाई किसी को नहीं देता है। तो ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सब व्यवहार कालके विस्तार हैं।

व्यवहारकालका उपमाप्रमाण तक विस्तार—समय, निमेष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन, रात, महीना, ऋतु, अयन और वर्ष। फिर इसके बाद गिनती चलेगी। सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख, करोड़, अरब, खरब, नील, महानील, शंख, महाशंख और इसके बाद पूर्व, पूर्वांग, फिर नयुतन युतांग नलिन, गिनते जाइए, हा हा हूहून, ये सब संख्यातमें बताये हैं। बीचमें कितने ही अंग छोड़ दिए हैं, और आगे चले तो पल्य, उसके बाद सागर उसके बाद उत्सर्पिणी और उसके बाद कल्पकाल और कल्पकालके बाद पुद्गल परिवर्तन और सबसे बड़ा भाव परिवर्तन। ये सब व्यवहारकालमें आये, पर कोई तो उपमा रूप हैं और कोई गिनती रूप हैं। ये सब कालके बहुत भेद हैं पर इस कालके पढ़नेसे इसका फल क्या मिलता है? उस कालसे मेरा कोई काम नहीं सधता, मेरा तो मेरे उपादानसे काम सधता है। अन्यकी दृष्टिसे हमें क्या मिलेगा? क्षोभ। एक जो अपना निरुपम शुद्ध चैतन्यतत्त्व है उसको छोड़कर मेरा अन्य किसी से कोई प्रयोजन नहीं है।

जीवा दु पुग्गलादोऽणंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो ॥३२॥

काल व कालपरिणमन— कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर पृथक्-पृथक् एक-एक ठहरा है। तो उनकी योग्यता उतनी है जितनी कि लोकाकाशके प्रदेश हैं वे असंख्यात हैं और उन कालद्रव्यकी परिणतियों का समय रूप कालपर्याय कितना है? तो जितने जीव हैं, जितने पुद्गल परमाणु हैं उनसे भी अनन्तगुणा है समय। यह उमर इतनी तेज रफ्तार से व्यतीत हो जाती कि आज जिसकी जो उमर है वह यह सोचता है कि इतनी उमर कैसे जल्दी व्यतीत हो गयी? सब अपना-अपना देख लें। तो जैसे जल्दी व्यतीत हो गयी तो भविष्यकी भी शीघ्र व्यतीत होने वाली है। पर चेत नहीं होता है।

ठठेरेके कबूतर—लोग उपमा दिया करते हैं, ठठेरे को कबूतरकी। पीतलके ठुकनेकी आवाज सुनकर कबूतर भाग जाते हैं। किंतु ठठेरेके घरमें रोज-रोज पीतल ठुकता रहता था। तो कबूतर रोज रोज कैसे उड़े, उसकी भी आदत बन गयी सो वहीं रहने लगा। ऐसे ही हम लोगों की भी आदत बन गयी। धर्म किया, दर्शन किया, पूजा की, स्वाध्याय किया, करते जाते हैं और कलकी अपेक्षा आज कुछ ज्ञान और विरक्तिका प्रकर्ष हुआ या नहीं हुआ, इसकी कोई परीक्षा नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभी यह बतलावो कि ये सब यहां बैठे हैं ८-१० सालके बच्चे भी यहां बैठे, जवान भी बैठे, वृद्ध लोग भी बैठे तो बड़ा इनमें कौन है ? तो कुछ कहेंगे कि ये जो ५० वर्षके हैं ये बड़े हैं और ये जो १० वर्षके हैं ये छोटे हैं। पर यह तो बतावो कि ज्यादा दिन किसे टिकना है ? हालांकि कोई किसीको देख नहीं आया पर अंदाज तो रहती ही है। तो जो जितनी बड़ी उम्रके हो गए वे छोटे रह गए क्योंकि उन्हें थोड़े दिन जीना है।

सबसे बड़ी समस्या—यह काल इतना जल्दी व्यतीत हो रहा है और हम लोगोंको सत्संग ऐसा नहीं अधिक मिलता अथवा स्वाध्याय, अध्ययन इनका प्रसंग बहुत अधिक नहीं मिलता अथवा मोहियोंके बीच अधिक रहना पड़ता, इन सब बाह्य साधनोंके प्रसादसे अन्तरमें प्रकर्ष नहीं हो रहा है, लेकिन बड़ी गम्भीर समस्या है जिसके आगे सारी समस्या न कुछ है, आत्मदृष्टि ऐसी जमा लें कि जो ज्ञानानन्द स्वभावमें अनुराग बढ़ाए ऐसी बातके सामने अन्य सब समस्याएँ न कुछ हैं, अरे अगर ऐसा हो गया तो घर मिट गया तो क्या, सब न कुछ बात है। मिट गया तो मिट जाने दो, अभी नुक्सान नहीं हुआ। अजी गांव, देश कुछका कुछ हो गया तो उसमें भी अपना कुछ नुक्सान नहीं हुआ। और आत्माको अपने आपकी खबर ही न रहे, जीवन व्यतीत हो जाय तो यह है सबसे बड़ी समस्या। जिसका अपने आपसे सदा का सम्बन्ध है वह समस्या सबसे बड़ी है, पर वह बड़ी समस्या तो छोटी बराबर भी सामने नहीं रहती, अन्य अन्य सब बातें प्रमुख स्थान पा लेती हैं और इसकी चर्चा भी नहीं रहती। पर विवेक कुछ बना है तो यह बात आनी चाहिए कि सबसे बड़ी समस्या हमारे सामने यह ही है कि मेरी दृष्टि अधिकाधिक इस ज्ञायक स्वभावी आत्माके जाननेमें, अनुभवनमें लगे। यह बात कैसे बने ? इससे बढ़कर और कुछ बात नहीं है।

परिचित क्षेत्रबिन्दुका क्या मूल्य—भैया ! मान लो जान लिया किसीको हजारों आदमियोंने और कुछ अच्छा कह दिया तो ये तो सब गोरखधंधा है, फंसनेकी बातें हैं। कोई काम सिद्ध होनेकी बात नहीं है। क्या होता है ? ३४३ घनराजू प्रमाण लोकके आगे यह १०-२० मीलका चक्कर या ५०० हजार मीलका क्षेत्र ये क्या गिनतीमें रहते हैं ? एक बड़े समुद्रके सामने एक बूँदका तो फिर भी गणितमें नम्बर आ जायेगा पर इस लोक के सामने हजार पांच सौ मीलका तो बिन्दु बराबर भी माप नहीं होता। इतनेसे क्षेत्रका मोह है और बाकी क्षेत्र इससे असंख्यात गुणे पड़े हैं। इनमें कोई मेरी प्रशंसा करने वाला नहीं है। तो जब इतनी बड़ी जगहमें मेरा कोई प्रशंसक नहीं है तो जरासे क्षेत्रके प्रशंसकोंसे कौन सी सिद्धि हो गयी ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिचितकाल बिन्दुका क्या मूल्य—समय काल कितना है ? अनन्तकाल जिस कालके सामने ये १०, २० वर्ष तो क्या, सागर भी गिनती नहीं रखता। खरबों, अरबोंके वर्ष भी कोई गिनती नहीं रखते तो भला अपनी कल्पनाके अनुसार यहां कुछ अच्छी करतूत कर जायें या कुछ बना जाएँ, नाम गढ़ जायें तो उससे कितनी आशा रखते हो कि कितने वर्ष तक उसका नाम चलेगा। अरे ज्यादासे ज्याद २५-५० वर्ष तक नाम चलेगा, उसके बादमें और भी वैसे ही लोग होंगे कि जीर्णोद्धार होगा, तो जिसका काम पहिले था उससे बढ़कर कोई हो गया तो उसका नाम उसकी जगह पर आ जायेगा तो कहां तक नाम बना रहेगा ? अब कौन ख्याल करता है। इन सौ, दो सौ, चार सौ वर्षोंके लिए अपना यश फैलानेसे क्या फायदा है ? अनन्ते कालके सामने यह इतना समय कुछ गिनती भी रखता है क्या ? कुछ भी तो गिनती नहीं रखता है। तो फिर क्यों इतने समयकी स्थितियोंमें मोह करके अपने को बरबाद किया जा रहा है ?

परपरिणमनका स्वमें अत्यन्ताभाव—वैज्ञानिक ढंगसे भी देखो तो कोई कैसा भी परिणमें, उससे अपनेको कुछ भी बात नहीं है। खुद का तो सब कुछ अपने ही परिणमन पर निर्भर है। सो समय कालके वर्णनमें हम इतनी दृष्टि तो बना लें कि काल तो अनन्त पड़ा हुआ है। उसमें से ये सौ पचास वर्ष कुछ भी मूल्य नहीं रखते। इतने कालके लिए अपने भाव बिगाड़ें तो उसका संसार लम्बा होता चला जाता है और उस परम्परासे अनन्त काल दुःख भोगने पड़ते हैं। सो जरासा गम खाना है कि सदाके लिए आराम मिलेगा। इस मनुष्यभवमें ही कुछ गम खा लें, विषय कषायों का आकर्षण न रखें तो अनन्त काल शाश्वत सुखमें व्यतीत हो सकेंगे। अनन्त भवोंमें एक मनुष्यभव ही विषय कषाय बिना रहे आए तो क्या बिगड़ा, बल्कि अनन्त काल फिर आनन्दमें व्यतीत होगा। पर नहीं सोचते हैं। खूँटा तोड़ कर मोहमें पगते हैं।

अपनी अपने पर जिम्मेवारी—भैया ! खुदके अपराधको कोई दूसरा न भोगेगा। प्रत्येक पदार्थ सत् है। स्वयं ही उसका परिणमन है। स्वयं ही जिम्मेदार है। यह व्यवस्था अवश्य है कि विभाव परिणमन जो होता है वह किसी परका निमित्त करके होता है। पदार्थका परिणमन स्वभाव होनेके कारण समस्त परिणमन खुद ही चलते हैं और उनका फल भी खुद को भोगना पड़ता है। हां सब न मानें तो न सही, इसको मैं ही मान लूँ ऐसा सोचना चाहिए। सबकी ओर क्यों दृष्टि जाय कि सब तो लगे हैं। वैभव जोड़नेमें, धनकी होड़ लगानेमें। खुदकी बात सोचो कि मैं तो लोक में सर्व से विविक्त केवल निज सत्ता मात्र हूं। इसको कोई जानता भी नहीं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई इससे व्यवहार भी नहीं करता, यह तो सदा अकेला ही पड़ा हुआ है। मैं अपनेमें अपना काम करता हूं, सब अपनेमें अपना काम करते हैं, फिर अपने ही हितकी बात सोची जाय।

स्वयंकी संभाल—कुआ नहीं छन सकता है। छानना तो अपना ही लोटा पड़ेगा। सबको जानो, सब बड़े अच्छे हो जायें, एक तो ऐसा हो नहीं सकता और हो भी गया और खुद जैसेके तैसे ही रहे तो उसमें खुद का क्या हुआ? कोई बूढ़े बाबा बाजारमें साग भाजी खरीदने जाएँ और वहीं पड़ौसकी दस बीस बहुवें आ जायें और कहें कि बाबा दो आनेकी सब्जी हमें ला दो, कोई कहे हमें चार आनेकी ला दो। तो बाबा बाजारमें जाकर सबकी सब्जी तो ले लें और बादमें जो दो आनेकी खराब सब्जी बची सो खुद ले लें और फिर घरमें आकर वह यह कहे कि हम बड़े परोपकारी हैं, पहिले गांवकी बहुवोंकी अच्छी अच्छी सब्जी ले दिया और बादमें जो बची उसे अपने लिए खरीद लिया, हम बड़े दयालु हैं। ऐसा यदि वह बूढ़ा बाबा कहे तो घरकी बहू तो रूठ जायेगी ना। अरे पहिले अपने लिए खरीद लेते बादमें पड़ौस की बहुवोंके लिए खरीद लेते। तो पहिले खुदकी संभाल कर लीजिए।

निगोदके कार्यक्रमोंका अभ्यास—दूसरेकी संभाल करने में आप समर्थ नहीं हो सकते हैं। खुदकी दृष्टि न संभाले तो वह दूसरोंका भला करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकता है। सुधरो अथवा न सुधरो, खुदकी बात तो सोचो, यहांसे मर कर कहां पैदा होंगे? फिर किसीसे क्या रहा सम्बन्ध? इतना तीव्र व्यामोह कि दूसरेके सुखमें सुखी और दूसरेके दुःखमें दुःखी। दूसरे सांस लें तो अपन भी सांस लें, दूसरेंको दम घुटे तो खुदकी दम घुटे। इतना तेज मोह है। सो सायद ऐसी बात होगी कि अगले भवमें निगोद जाना है सो वहां ऐसा करना पड़ेगा सो उसका अभ्यास यहां किया जा रहा है। हम एकके जन्मते जन जायें, एकके मरते मर जायें, ऐसा करना पड़ेगा। इसका ऐक्सरसाइज है यह सो सीख लें। दूसरेके दुःखमें दुःखी हों, दूसरे सांस ले तब सांस लें, तो हम निगोदकी बात सीख रहे हैं। क्या सिद्धि है?

परिजनसंग व धर्मप्रगति—भैया! यहां यदि सम्बन्ध हुआ है, परिवार है, कुटुम्ब है तो उस सम्बन्धको धर्मके लिए समझो, मौज और भोगके लिए न समझो। धर्मके रूपमें व्यवहार हो और परस्पर धर्मप्रगतिका उत्साह हो तो उस संगसे कुछ लाभ भी मिलेगा अन्यथा केवल मोह भोग मौजके लिए ही सम्बन्ध है तो वहां एक दूसरेके बिगाड़की होड़ हो रही है, और दूसरी कोई बात नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह काल जो व्यतीत हो रहा है इसका स्रोत; साधन है निश्चय काल द्रव्य। अब जरा सर्वांगीण दृष्टिसे विचार करो कि यदि यह काल द्रव्य न होता तो यह काल समय कहां होता और समय न होता तो पदार्थ का परिणमन कैसे होता और पदार्थका परिणमन न होता तो द्रव्य भी कहलाता। जब द्रव्य भी न रहा, परिणमन भी न रहा तो कुछ भी न रहा। पर ऐसा है कहां? हम तो कहते हैं कि हम कुछ न हों तो बड़ी अच्छी बात है। हम सिफर बन जायें अच्छी बात है पर बन कैसे जायें? सत यदि प्रवर्तते हैं तो परिणमेंगे। अब तो इसीमें भलाई है कि ऐसा परिणाम बनाएँ कि हमारे भाव अनाकुलतापूर्ण हों।

कालपरिज्ञानका सदुपयोग—कालद्रव्य वर्तनाका कारण है। कुम्हारके चक्की जैसे वह कील एक आधार है, सारा चक्र उसीके सहारे घूम रहा है। यों ही यह काल द्रव्य एक निमित्तभूत आधार है और सर्व ओर परिणमन हो रहा है? यदि कालद्रव्य न होता तो ५ अस्तिकायोंका फिर परिणमन कहांसे होता। तो यह कालका वर्णन जानकर काल पर दृष्टि नहीं देना, किन्तु समझ लेना है कि अब इन क्षणोंको यों ही अनाप सनाप नहीं व्यतीत करना है किन्तु ऐसी आत्मदृष्टि जगे कि हमें अपना कल्याण करना है। यह बात अपनेमें घर कर जाय और ऐसी लगन लग जाय कि मोहमें सार नहीं है किन्तु शुद्ध जो निज सहज ज्ञायकस्वरूप है उसकी दृष्टि में ही लाभ है, उसीका ही हमें यत्न करना है।

प्रतीतिसिद्ध व युक्तिसिद्ध पदार्थ—द्रव्यकी जातियां सब ६ हैं— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन ६ द्रव्योंमें से जीव और पुद्गल ये दो प्रकारके द्रव्य तो प्रतीतिमें आते हैं। इसकी समझ अधिक बैठती है। जीवके सम्बन्धमें तो बहुत परिचय है। चाहे उसका सहज स्वरूप न जान पायें पर जीवके सम्बन्धमें साधारणतया सबको कुछ न कुछ ज्ञान है। बता दोगे देखते ही कि इसमें जीव है, इसमें जीव नहीं है। जीव द्रव्यका प्रत्यय लोगोंको अधिक है और पुद्गलद्रव्यकी भी प्रतीति अधिक है। ये सब आंखों जो कुछ दिखते हैं ये स्कंध पुद्गल ही तो हैं, पर शेष चारों द्रव्य सूक्ष्म हैं जो प्रतीतिमें नहीं आ पाते, युक्तियोंसे जाननेमें आते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश व कालका परिचय—जैसे मछलियोंको चलनेमें जल सहकारी कारण है, वह एक विशेष बात है, पर जीव पुद्गलको चलानेमें कोई चीज सहकारी कारण है तो उस वस्तुका नाम है धर्मद्रव्य। और जब धर्मद्रव्य आदिक जो गमनका हेतु है तो गमन करके जो स्थित हो, ठहरता हो तो जितने नवीन कार्य होते हैं उनका कोई निमित्त कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई इससे व्यवहार भी नहीं करता, यह तो सदा अकेला ही पड़ा हुआ है। मैं अपनेमें अपना काम करता हूं, सब अपनेमें अपना काम करते हैं, फिर अपने ही हितकी बात सोची जाय।

स्वयंकी संभाल—कुआ नहीं छन सकता है। छानना तो अपना ही लोटा पड़ेगा। सबको जानो, सब बड़े अच्छे हो जायें, एक तो ऐसा हो नहीं सकता और हो भी गया और खुद जैसेके तैसे ही रहे तो उसमें खुद का क्या हुआ ? कोई बूढ़े बाबा बाजारमें साग भाजी खरीदने जाएँ और वहीं पड़ौसकी दस बीस बहुवें आ जायें और कहें कि बाबा दो आनेकी सब्जी हमें ला दो, कोई कहे हमें चार आनेकी ला दो। तो बाबा बाजारमें जाकर सबकी सब्जी तो ले लें और बादमें जो दो आनेकी खराब सब्जी बची सो खुद ले लें और फिर घरमें आकर वह यह कहे कि हम बड़े परोपकारी हैं, पहिले गांवकी बहुवोंकी अच्छी अच्छी सब्जी ले दिया और बादमें जो बची उसे अपने लिए खरीद लिया, हम बड़े दयालु हैं। ऐसा यदि वह बूढ़ा बाबा कहे तो घरकी बहू तो रूठ जायेगी ना। अरे पहिले अपने लिए खरीद लेते बादमें पड़ौस की बहुवोंके लिए खरीद लेते। तो पहिले खुदकी संभाल कर लीजिए।

निगोदके कार्यक्रमोंका अभ्यास—दूसरेकी संभाल करने में आप समर्थ नहीं हो सकते हैं। खुदकी दृष्टि न संभाले तो वह दूसरोंका भला करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकता है। सुधरो अथवा न सुधरो, खुदकी बात तो सोचो, यहांसे मर कर कहां पैदा होंगे ? फिर किसीसे क्या रहा सम्बन्ध ? इतना तीव्र व्यामोह कि दूसरेके सुखमें सुखी और दूसरेके दुःखमें दुःखी। दूसरे सांस लें तो अपन भी सांस लें, दूसरेंकी दम घुटे तो खुदकी दम घुटे। इतना तेज मोह है। सो सायद ऐसी बात होगी कि अगले भवमें निगोद जाना है सो वहां ऐसा करना पड़ेगा सो उसका अभ्यास यहां किया जा रहा है। हम एकके जन्मते जन जायें, एकके मरते मर जायें, ऐसा करना पड़ेगा। इसका ऐक्सरसाइज है यह सो सीख लें। दूसरेके दुःखमें दुःखी हों, दूसरे सांस लें तब सांस लें, तो हम निगोदकी बात सीख रहे हैं। क्या सिद्धि है ?

परिजनसंग व धर्मप्रगति—भैया ! यहां यदि सम्बन्ध हुआ है, परिवार है, कुटुम्ब है तो उस सम्बन्धको धर्मके लिए समझो, मौज और भोगके लिए न समझो। धर्मके रूपमें व्यवहार हो और परस्पर धर्मप्रगतिका उत्साह हो तो उस संगसे कुछ लाभ भी मिलेगा अन्यथा केवल मोह भोग मौजके लिए ही सम्बन्ध है तो वहां एक दूसरेके बिगाड़की होड़ हो रही है, और दूसरी कोई बात नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सजातीय बन्ध है। ऐसा बंध इन चार द्रव्योंमें नहीं है क्योंकि धर्म धर्मके साथ कैसे मिलेगा ? अधर्मद्रव्य तो एक ही है। अधर्मद्रव्य भी एक ही है, आकाशद्रव्य भी एक ही है, रहा शेष कालद्रव्य सो वह है यद्यपि असंख्यात लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु ठहरा है लेकिन वह तो स्थिर है जो कालाणु जिस प्रदेश पर है वह उसही जगह रहता है, हेर फेर नहीं होता। कालाणुवोंमें स्थान परिवर्तन नहीं चलता। जहां जो कालाणु है वहां ही वह कालाणु स्थित है। फिर एक कालद्रव्यके साथ दूसरे कालद्रव्यका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?

स्वभावगुणपर्याय—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन चार द्रव्योंमें न तो सजातीय बंध है और न विजातीय बंध है। इस कारण इन चार द्रव्योंके विभाव गुणपर्याय होते ही नहीं हैं। धर्मद्रव्यमें स्वभावगुणपर्याय है। अधर्म, आकाश और कालमें द्रव्यमें भी स्वभावगुण पर्याय है। विभावगुणपर्याय इसमें नहीं होती है। गुणपर्यायका अर्थ है कि पदार्थमें जो गुण हैं, शाश्वत शक्ति है उसका जो परिणमन है उसे गुणपर्याय कहते हैं। इन ६ द्रव्योंमें चार द्रव्योंको छोड़कर शेषके जो दो बचे हैं जीव और पुद्गल, इनमें स्वभावगुण पर्याय भी होता है और विभावगुण पर्याय भी होता है। जीवमें स्वभावगुणपर्याय है वह जो भगवानमें पायी जाती है।

जीवके स्वभावगुण पर्याय—ज्ञानका स्वभावगुण पर्याय केवलज्ञान है, दर्शनका स्वभावगुण पर्याय केवलदर्शन है, आनन्दका स्वभावगुणपर्याय आनन्द है। चारित्रगुणका स्वभावगुण पर्याय शाश्वत आत्मस्थिरता है। ये तो हैं सब स्वभाव गुण पर्यायें और संसारी जीवोंमें विभाव गुणपर्यायें मिलती हैं। ज्ञानशक्तिकी विभाव गुण पर्याय है। केवलज्ञान को छोड़कर शेषके ७ ज्ञान, दर्शन गुणके विभाव पर्याय हैं—केवल दर्शनको छोड़कर शेषके सब दर्शन। आनन्द गुणके विभाव परिणमन हैं सुख और दुःख। जो परिणमन पर-उपाधिका निमित्त पाकर हो उसे विभावपरिणमन कहते हैं। खुद वही पदार्थ खुदमें विभावका कारण नहीं बनता है।

विभावगुणपर्यायत्वका कारण औपाधिकता—यद्यपि विभाव उस ही खुदके द्रव्यमें उत्पन्न होता है जो कि उपादानभूत है, पर निमित्तभूत वही पदार्थ नहीं है। यदि वही एक पदार्थ विभावका जैसा उपादान है, निमित्त भी बन जाय तो वह निमित्तभूत पदार्थ तो शाश्वत है फिर सदा ही विभाव रहना चाहिए। विभाव परपदार्थका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है और इसी कारण वह विभाव कहलाता है। आत्मातिरिक्त अन्य पदार्थोंका निमित्त पाकर जो भी परिणमन होगा वह स्वभावसे विपरीत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन होगा, स्वभाव परिणमन नहीं। इस जीवके साथ कर्म लगे हैं,
और वे ही इस जीवके विभावगुण परिणमनके निमित्त होते हैं। अन्य जो
इन्द्रियके विषय हैं ये जीवके विभाव गुण परिणमनमें निमित्त नहीं होते।
कर्मोंका उदय हो तो उसका फल मिले। इसमें भी आश्रयभूत नोकर्मका
सम्बन्ध हो तो फल मिलता है। जैसा कर्मोदय है और कुछ नोकर्म है उस
नोकर्मका सन्निधान होने पर कर्मोदय फलवान् होता है।

बाह्य साधनोंका स्थान—भैया! कदाचित् ऐसा भी हो जाता कि
नोकर्म न हो तो कर्मोदय निष्फल हो जाता है, और इस दृष्टिसे चरणानु-
योगकी पद्धति अधिक ग्राह्य हो गयी है। अब त्याग करो नोकर्मका।
विषय कषायोंके आश्रयभूत पदार्थोंका त्याग करो तो बहुत कुछ यह
सम्भव है कि नोकर्म न मिलनेसे वे कर्म निष्फल खिर जायें। ठीक है
फिर भी बहुत बड़ी आपत्ति यह लगी है कि कर्मोदय जब होता है तो जो
भी सहज मिल गया उसी का आश्रय बनाकर उस विपाकमें बह जाता है।
जैसे किसीको गुस्सेकी आदत पड़ी है तो दूसरा आत्मा वो साथ हो उसका
आश्रय करके गुस्से करेगा। कोई यह सोचे कि अमुक व्यक्तिके होनेसे
गुस्सा आता है, इस व्यक्तिको न रहना चाहिए तो चाहे वह व्यक्ति न रहे
तो भी जो कुछ भी मिलेगा, उसका आश्रय करके वह गुस्सा करने लगेगा।
और कभी यह स्थिति आ जाय कि कोई संग भी न मिले तो खुदकी ही
अनेक घटनाएँ ऐसी चलती रहती हैं, थोड़ा हाथ पैर या सिरमें कुछ लग
गया लो घटना बन गयी, उसीका आश्रय करके गुस्सा बन जायेगा।

विभाव्य उपादानको निमित्तोंकी सुलभता—भैया! ऐसे बहुत कम स्थल
होते हैं कि नोकर्मके अभावमें कर्म निष्फल जायें। क्योंकि यह जगत
नोकर्मसे भरा हुआ है। जैसे किसीको घमंड करनेकी प्रकृति बनी है और
उस घमंडका पोषण घरमें नहीं हो पाता, परिवारके लोग उसे मान नहीं
देते हैं। तो गुस्सामें आकर घर छोड़ देगा। और कहीं न कहीं तो जायेगा
ही। सो जहां जायेगा, जिस गोष्ठीमें वह होगा उसमें ही परजीवोंको
लक्ष्यमें लेकर अब घमंड पोषणकी मनमें लायेगा तो जब उदय और
योग्यता अनुकूल चलती है तो जगत तो नोकर्मोंसे भरा हुआ है। जिस
चाहे पदार्थका आश्रय करके यह अपने कषायोंको उगलेगा। फिर भी
चरणानुयोगकी पद्धतिसे नोकर्मका त्याग करने वाला ज्ञानी पुरुष बहुत
कुछ अपनी रक्षा कर लेता है और फरक पड़ता ही है। जब अधिक संकल्प
विकल्प करनेका वातावरण नहीं रहता है तो निर्विकल्प समाधिकी पात्रता
उसमें विशेषतया प्रकट हो ही जाती है। आत्मामें जो ज्ञान, दर्शन,
चारित्र आनन्द, श्रद्धा गुण हैं ये उपाधिके सन्निधानमें चूँकि हमारी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

योग्यता भी विकाररूप परिणमने की है सो विकाररूप परिणाम जाता है, वे सब हैं विभावगुण पर्यायें।

सहज स्वरूपके संभालकी आवश्यकता—जब यह जीव अपने आपके सहज स्वरूपकी संभाल कर ले तो ज्ञायकस्वरूपकी दृष्टिके बलसे ऐसा योग्य बनता है यह जीव कि वहां विभावपरिणमन शांत होता है और स्वभावपरिणमन की तैयारियां होने लगती हैं। जब यह जीव सर्वथा शुद्ध हो जाता है तो उसमें व्यक्त स्वभावगुण पर्याय प्रकट हो जाती है। यह तो प्रयोगसिद्ध बात है और जो चाहे कर सकता है कि जब परपदार्थकी ओर अपनी दृष्टि रखता है, आकर्षण करता है तब तो इसे आकुलता उत्पन्न होती है और जब परपदार्थका निरोध रहता है तब चूँकि केवल यह स्व ही ज्ञानमें रहता है अतः इसमें आकुलता का स्थान नहीं मिलता। आनन्द चाहिए, शांति चाहिए तो एकमात्र यही उपाय है अपने सहज-स्वरूपका ज्ञान करना। सहजस्वरूप रूप मैं हूं, ऐसी प्रतीति करना और इस स्वरूपमें ही स्थिर होना, मग्न होना, यही आनन्द पानेका एकमात्र उपाय है।

आत्मप्रयोग—यहां कुछ पीछे की बात तो नहीं कही जा रही है। तीनों लोकोंमें कहां-कहां कैसी-कैसी रचना है? इसकी बात नहीं कही जा रही है अथवा बहुत काल पहिले क्या हुआ था, उस इतिहासकी बात नहीं कही जा रही है, किन्तु यहां तो ऐसी बात स्पष्ट है जैसे चक्कूपर धार लगाने वाले धार लगाते जाते और धारको देखते जाते, आजमाते जाते यों ही अपने आपमें जो गुण हैं, शक्ति है उसकी धार बनाता जाय, परिणति करता जाय, धार देखता जाय धारको आजमाता जाय। यह कहीं अन्य जगहकी बात नहीं कही जा रही है, खुदकी ही बात है। थोड़ा परका आकर्षण छोड़ो, किसी परमें रखा कुछ नहीं है, वे मेरे लिए कुछ शरण नहीं हैं। यहांका यह कषायानुकूल व्यवहार है, फिर वस्तुतः सब आत्मा जुदे-जुदे हैं। तो जरा ऐसा जानकर मोहमें अन्तर कर, परका आकर्षण न बना, तो अपनी यह बात समझमें जल्दी आ जायेगी।

अपनी बात—यह आत्मा ज्ञानमय ही तो है। स्वयं ज्ञानमय है और ज्ञान द्वारा यही ज्ञानमें न आए यह कैसे हो सकता है? परपदार्थोंकी ओर बहुत दूर तक देखते हैं। जैसे बहुत दूरकी चीज को देखनेमें अपनी निगाह लगाई हो, तो न खुद ही देखनेमें आता है और निकटकी भी चीज देखनेमें नहीं आती। ऐसे ही उपयोग द्वारा बहुत दूरकी बात अत्यन्त भिन्न पदार्थकी बात हम देखनेमें लगे हों तो वहां न हम दिख सकते हैं और न हमारे निकटवर्ती विभावादिक करतूत कर्म दिखनेमें आ सकते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोह भाव कम होने पर आकर्षण नहीं होता। और ऐसी स्थितिमें अपनी बातकी समझ बैठ सकती है अन्यथा अपनी बात अपनी समझमें नहीं आ सकती।

निकटीय वातावरणके विज्ञानकी आवश्यकता—इस ग्रन्थमें इस प्रकरण तक ६ द्रव्योंकी विशद व्याख्या चल रही है और यह सब सम्यग्ज्ञान हमारे आत्महितके साधनमें साधक बन रहा है। अपने निकटका समस्त वातावरण यदि अच्छी तरहसे विदित हो तो वह पुरुष सावधान विवेकी, स्वच्छ, साफ बना रहता है। और जिसे अपने निकटका वातावरण भी न मालूम हो वह तो अंधेरेमें है, धोखेमें है, विनाशके सम्मुख है। तो हमारे निकटका यह सब वातावरण है। छहों द्रव्य वाली बात हमारे ही निकटका वातावरण है, पुद्गलमें तो निकटता है ही। शरीरसे लगा है। कर्मोंका बंधन है, सूक्ष्म शरीर भी इसका साथ नहीं छोड़ते हैं जब तक मोक्ष नहीं होता। ऐसा निकट वातावरण है, उसके बारेमें हमें सही बात न मालूम पड़े तो हम कहां सावधान रह सकते हैं, विवेकी रह सकते हैं और प्रगतिशील कहांसे हो सकते हैं? इस कारण इन सबका जानना आवश्यक है।

कालका निकट सम्बन्ध—धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये भी हमारे अनुभवमें नहीं समा पाते हैं फिर भी हैं तो हमारे निकटके ही वातावरण। कालद्रव्यके परिणमनरूप समयके गुजरनेका निमित्त पाकर हम परिणमा करते हैं। कोई बालक ८ वर्षका है। साल भर बाद जो उसकी परिस्थिति बन सकती है, साल व्यतीत न हो तो कहां बन जायेगी? ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यों-त्यों यह परिणमन बनता रहता है। तो कालद्रव्यसे भी हमारे सम्बन्धकी निकटता है।

आकाशका निकट सम्बन्ध—आकाश जिसमें हम बैठे ही हैं उसकी भ निकटता है और धर्म अधर्म इसमें भी निकटता है। हम चलते हैं, ठहरते हैं, सो ठहरते तो हैं, किन्तु है इन सबमें हमारा अत्यन्ताभाव। इनसे मुझ में कुछ आता नहीं। यदि स्वरूपदृष्टिसे निरखो तो कोई एक प्रश्नका उत्तर चाहेगा कि बतावो तुम कहां रहते हो? तो उसका उत्तर होगा कि हम अपने प्रदेशोंमें रहते हैं। आकाशमें नहीं रहते हैं। आकाशमें आकाश है और हममें हम हैं। भले ही अनादि कालसे यह बात बनी हुई है कि हम आकाशको छोड़कर अन्यत्र नहीं रहते, न रहेंगे, इतने पर भी जैसे आकाशद्रव्य अपने घरका बादशाह है, पूर्ण है, उस आकाशका सब कुछ उस आकाशमें ही है, इस प्रकार हम भी अपने घरके राजा हैं, अपने ही में पूर्ण हैं और अपनेमें ही परिणमते हैं। जब इस आकाशद्रव्यसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा, भिन्नता बनी है तो हम आकाशमें कहां है, हम तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने आपमें हैं। स्वरूपदृष्टिसे इस भांति देखा जाता है।

इन सब पदार्थोंका विवरण अत्यन्त रम्य है, भव्य जीवोंको सुनकर अमृत समान संतोष देने वाला है। जो पुरुष प्रमुदित चित्त होकर इस सब ज्ञानको जानता है उसका यह सब परिज्ञान संसारसंकटोंसे मुक्ति पानेके लिए कारण होता है।

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकायत्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु बहुप्पदेसत्तं ॥३४॥

पांच द्रव्योंके अस्तिकायपना—ये ६ द्रव्य हैं। इनमें कालको छोड़कर शेषके ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं। जो बहुप्रदेशी होते हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। अस्तिकाय शब्दमें दो शब्द हैं—अस्ति और काय अर्थात् है और बहुप्रदेशी है। उनका सद्भाव है इसका द्योतक तो है अस्ति, और वह बहुप्रदेशी है इसका वाचक है काय। कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है क्योंकि कालद्रव्य एकप्रदेशी है, दो प्रदेशी भी नहीं है। और इससे ऊपर कोई भी बहुप्रदेशी नहीं है। समय नामक द्रव्य अप्रदेशी होता है ऐसा आगममें कहा है। अप्रदेशीका अर्थ प्रदेशरहित नहीं लेना, किन्तु बहुप्रदेशी नहीं है मात्र एकप्रदेशी है यह समझना। जैसे अनुदर कन्या कहते हैं उसे जिसका पेट चिपटा हो, बहुत पतला हो तो कहते हैं कि इसके पेट ही नहीं है। अरे यदि पेट नहीं है तो खड़ा कैसे होगी? पर इसके मोटा पेट नहीं है, ऐसे ही अप्रदेशी कहे तो इसका अर्थ यह नहीं लेना कि उसमें प्रदेश नहीं हैं, किन्तु बहुप्रदेश नहीं हैं। काल तो केवल द्रव्यस्वरूप है और कालके अतिरिक्त अन्य ५ द्रव्य अस्तिकाय भी हैं।

काय शब्दका अर्थ—काय शब्दका अर्थ है संचीयते इति कायः। जो संचित किया जाय उसे काय कहते हैं। जिसमें बहुतसे प्रदेश प्रचय हों, उसे अस्तिकाय कहते हैं अथवा काय मायने शरीर। जैसे शरीर बहुप्रदेशी होता है उसी तरह जो बहुप्रदेशी हो उसे काय कहते हैं। अंग्रेजीमें तो कायको बौडी बोलते हैं। तो चाहे जीवकी बाडी हो, चाहे अजीवका कोई पिण्ड हो उसका भी नाम बौडी है। शरीरको भी काय कहते हैं, और जो शरीर नहीं है किन्तु बहुप्रदेशी है, संचयात्मक है उसे भी काय कहते हैं। बोडीका ठीक पर्याय काय हो सकता है, शरीर नहीं हो सकता है। तो जो कायकी तरह हो उसे काय कहते हैं। अस्तिकाय ५ होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। इनमें अस्ति नाम सत्ताका है और काय नाम बहुप्रदेशपनेका है।

सत्ता और सत्ताकी सप्रतिपक्षता—सर्वप्रथम सत्ताका अर्थ किया जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है। सत्ता कैसी होती है ? सप्रतिपक्ष अर्थात् विरोधी भाव सहित कोई चीज सत् है तो वही चीज असत् भी है। किसी प्रकार यदि मनुष्य सत् है तो मनुष्यत्वकी अपेक्षा और मनुष्यत्वके सिवाय बाकी पशु पक्षी आदि जितने अन्य जीव हैं उन सबकी अपेक्षासे असत् है। जैसे स्याद्वाद में कहते हैं स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति। स्वरूपेण सत्, पर रूपेण असत्। अच्छा जरा और अन्तरकी बात देखो, भिन्न-भिन्न वस्तुओंसे बताया गया स्याद्वाद तो अच्छा नहीं लगा। क्योंकि एक ही वस्तुमें सत् और असत् नहीं बताये। एक वस्तुका सत् उस वस्तुका है तो अन्य वस्तुवोंकी अपेक्षा असत् है ऐसा बताया है। जिज्ञासु कहता है कि मुझे तो ऐसा स्याद्वाद बतावो कि उसी पदार्थमें सत् भी पड़ा हो और उसी पदार्थ की अपेक्षा वही पदार्थ असत् हो जाता हो। जैसे नित्य और अनित्य, ये हमें ठीक जंच रहे हैं। जीव नित्य है तो जीवकी ही अपेक्षा नित्य है और जीव अनित्य है तो उसही जीवकी अपेक्षा अनित्य है। उसही एक जीवके जो द्रव्यत्व है उसकी दृष्टिसे तो वह नित्य है और जो पर्यायत्व है उसही जीवमें उसकी दृष्टिसे अनित्य है। तो यह तो स्याद्वाद हमें भा गया कि देखो दूसरे पदार्थकी अपेक्षा नहीं लगायी गयी पर सत् असत्में तो परकी अपेक्षा लेकर तुम बोलते हो। जीव जीव रूपसे सत् है और जीव अजीव रूपसे असत् है। हमें तो नित्य अनित्य एक अनेककी तरह एक ही पदार्थकी अपेक्षासे सत् बतावो और उसही पदार्थकी अपेक्षासे असत् बतावो तो हो सकता है क्या ऐसा ? हो सकता है। कैसे हो सकता है, इसको दो तीन मिनट बादमें बतायेंगे।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी द्वितीय दृष्टि—भैया ! पहिले ऐसा जानो कि सत्ता प्रतिपक्षसहित है, अर्थात् सत्ता दो प्रकार की है महासत्ता और आवान्तर सत्ता। महासत्ता तो वह है जो सब पदार्थोंमें सामान्य सत्त्व पाया जाता है और एक एक पदार्थकी जो सत्ता है वह है आवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे आवांतर सत्ता असत्ता है और आवांतर सत्ताकी अपेक्षासे महासत्ताकी अपेक्षासे महासत्ता असत् है। यह भी कुछ भिन्न-भिन्न बात कही जा रही है। इसमें इतना तो आया कि महासत्तामें सब आ गये। उसमें ही आवांतर सत्ताका एक रूप ले लिया है। और पहिले जो बताया था, जिसकी जिज्ञासामें आपको कहा गया है कि २-३ मिनट में बतावेंगे यह तो इससे भी और दूरकी बात थी। जीव जीवकी अपेक्षा सत् है तो असत्में जीवको छुवा ही नहीं गया। अजीवकी अपेक्षा असत है और इस महासत्ता व आवांतर सत्तामें कमसे कम इतनी बात तो आयी कि महासत्तामें सबका ग्रहण है। उसमें आवांतर सत्ता भी पड़ी है। जिस किसी वस्तुकी सत्ता निरख रहे हैं वह हमारे सबके समानाधिकारमें पड़ी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भई है। लेकिन जिज्ञासु कहता है कि मुझे इस कथनमें भी संतोष नहीं हो रहा है। हमें तो एक ही ऐसा पदार्थ बतावो कि उस पदार्थकी अपेक्षासे यह सत् है और इसही पदार्थकी अपेक्षासे यह असत् है। दूसरी बात सुन कर जिज्ञासु उस बातको अपने अन्तरकी बातको भूल नहीं रहा हैं। हमें तो एक ही पदार्थ बतावो कि उस ही पदार्थकी अपेक्षा सत् हो और उस ही पदार्थकी अपेक्षा असत् हो। अच्छा, तो चलो अब।

सत्ता की सप्रतिपक्षता की तृतीय दृष्टि—देखो भैया! पदार्थ गुण-पर्यायात्मक है। उस पदार्थ को हम कभी 'गुण समुदायो द्रव्यम्' इस रूपसे भी देख सकते हैं और उस ही पदार्थको 'पर्याय समुदायो द्रव्यम्' इस रूपसे भी देख सकते हैं। जब हमने गुण रूपसे उसका सत्त्व देखा तो पर्याय रूपसे समझमें आने वाला सत्त्व वह नहीं है। तब जो गुणात्मकताके रूपमें सत् है वही पदार्थ पर्यायात्मकताके रूपमें असत् है और जब उसे पर्यायात्मकताके रूपसे निरखा तो पर्यायात्मकताकी निगाहसे तो सत् है किन्तु गुणात्मकताकी दृष्टिसे असत् है। गुणात्मकता महासत्ता है और पर्यायात्मकता आवान्तर सत्ता है, क्योंकि गुण व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। यहां इस सप्रतिपक्षपन को इन दोनों पद्धतियोंमें निरखते जाइये। एक तो एक ही पदार्थमें सप्रतिपक्षपना देखें और तत् और असत् की अपेक्षा वह पदार्थ है और वह नहीं, किन्तु उससे भिन्न अनेक समस्त पदार्थ उनकी अपेक्षा से नहीं, यों सप्रतिपक्षपना दीखा।

आवान्तर सत्में अर्थक्रियाकारित्व—उनमेंसे प्रथम भिन्न-भिन्न उपदेश की पद्धतियोंसे सप्रतिपक्षपना दिखाया था, महासत्ता और आवान्तर सत्ता समस्त पदार्थोंमें विस्तारसे व्यापने वाले सत्को महासत् कहते हैं और प्रतिनियत जिस किसी पर लक्ष्य हो उस वस्तुमें रहने वाले सत्को आवान्तर सत् कहते हैं। यों समझ लीजिये कि महासत्ता तो बोलने और समझने की बात है और आवान्तरसत्ता काम करने की बात है। जैसे गौ जाति और गौ पशु। गौ जाति तो बोलने और समझनेकी बात है और गौ पशु, उससे दूध निकलता है, सो व्यवहार करने की बात है। गौ जातिमें दूध न निकलेगा। दूध निकलेगा किसी प्रतिनियत गौ से। किसीको दूध चाहिये तो कहे जावो उस गांवमें हजारों गायें हैं, उन सब गायोंमें एक गोत्व सामान्य है, तुम तो सारे गांवके मालिक हो जावो, तुम गौ जातिसे दूध निकाल लावो तो गौ जातिसे इसे दूध न मिलेगा। दूध दुहने जायेगा तो किसी प्रतिनियत गौ के पास जायेगा। इस ही प्रकार महासत् एक स्वरूप सादृश्य समझने की बात है। यहां अर्थक्रिया न होगी, अर्थक्रिया तो प्रतिनियत वस्तुमें होगी, आवान्तर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत् में होगी तो यह सत् महासत् रूप में है तो उसका प्रतिपक्ष है आवान्तर सत् और आवान्तर सत् रूप में प्रस्तुत करे तो उसका प्रतिपक्षी है महासत्। तो यह महासत् सर्वपदार्थोंमें व्यापता है और आवान्तर सत् प्रतिनियत वस्तु में व्यापता है।

गुणमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षता—महासत् समस्त व्यापक रूपमें व्यापता है और आवान्तर सत् प्रतिनियत रूपमें व्यापता है। पहिले द्रव्यदृष्टि करके प्रतिपक्षताको बताता था, अब यह गुणदृष्टि करके सप्रतिपक्षता कही जा रही है। समस्त व्यापकरूप सबमें व्यापने वाला जो सत् है वह महासत् है और प्रतिनियत एक शक्तिमें गुण में व्यापने वाले सत् को आवान्तर सत् कहते हैं। वही पदार्थ सर्वगुणप्रचयाभेदात्मकतासे जो सत् मिला वह प्रतिनियत एक गुणमुखसे देखा गया सत् रूप नहीं है और जो प्रतिनियत एक गुणमुखसे देखनेपर जो सत विदित हुआ वह सर्वगुणप्रचयाभेदात्मकतासे देखा गया सत् रूप नहीं है। यों द्वितीय पीढ़ी पर महासत्ता व आवान्तर सत्ताकी पद्धति कही।

पर्यायमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षता—इस ही पद्धतिमें तीसरी पीढ़ी पर कहा जा रहा है कि जो अनन्त पर्यायोंमें व्यापे वह है महासत्। और प्रतिनियत एक पर्यायमें व्यापे वह है आवान्तर सत्। द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीन रूपोंमें पदार्थका परिज्ञान किया जाता है। सो इन तीनों ही पद्धतियोंमें महासत् और आवान्तर सत् परस्पर प्रतिपक्ष हैं, यह कथन किया गया है।

द्रव्य व गुणरूपसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताका उपसंहार—अब पुनः। अभिन्न पदार्थको एक ही पदार्थमें महासत् और आवांतर सत् निरखिये। एक पदार्थ जितना है वह समग्र है। अनन्तगुणात्मक अनन्तपर्यायात्मक उस समग्र वस्तु में विस्तृत रूपसे व्यापने वाला महासत् है और उस प्रतिनियत वस्तुके उन समग्र विस्तारोंमें से जब कभी एक धर्मकी मुख्यतासे देखा जाय तो उस समय वह आवांतर सत् हो गया जो उस व्यापने वाले महासत्में से व्याप्य सत् है। तो एक ही पदार्थमें यह महासत् और आवांतर सत् सप्रतिपक्ष हैं। अब उस ही एक पदार्थमें समग्र गुणोंमें व्यापकर रहने वाला सत् महासत् है। तो जब हम उस पदार्थको किसी एक गुणकी मुख्यतासे परिचय करने जाते हैं तो वह आवांतर सत् हो जाता है। व्यवहार जितना चलता है वह आवांतर सत्से चलता है। समग्रगुणोंको हम एक साथ बता दें, ऐसी कोई वचनपद्धति नहीं है। किसी गुणकी मुख्यतासे हम उस पूर्ण वस्तुको समझने और समझानेका यत्न किया करते हैं तो गुणरूपमें एक ही पदार्थमें यह महासत् और आवांतर सत् विदित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है।

पर्यायमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षतके विवरणका उपसंहार—एक ही पदार्थ में एक ही समयमें अनन्तपर्यायें हैं और भिन्न भिन्न समयोंमें भी अनन्त पर्यायें हैं। एक समयमें तो यों अनंत पर्यायें हैं कि प्रत्येक पदार्थ अनन्त-गुणात्मक होता है और जितने गुण होते हैं वे सब सदा कर्मठ रहते हैं। कोई गुण बेकार नहीं रह पाता। वह किसी न किसी परिणमनके रूपमें व्यक्त हुआ करता है। जैसे आत्मामें श्रद्धा, दर्शन, ज्ञान चारित्र, आनन्द आदि अनेक गुण हैं तो ऐसे ही उन सबके परिणमन भी एक साथ हैं। एक ही कालमें ज्ञानगुणका भी परिणमन है, दर्शन गुणका भी परिणमन है, सब गुणोंका परिणमन है, और भिन्न-भिन्न समयोंमें व्यतिरेकरूपसे अनेक परिणमन होते रहते हैं। उन पर्यायोंमें और एक ही क्षणमें होने वाले अनन्त पर्यायोंमें व्यापने वाला जो सत् है वह है महासत् और उस समयमें एक ही उस पदार्थके जिसके सम्बन्धमें महासत् देखा है, किसी एक पर्यायको निगाहमें रखकर उसका अस्तित्व देखें तो वह है आवांतर सत्। इस तरह ये सत् सप्रतिपक्ष हैं।

पक्षस्थापनमें द्वैतपनेकी गुम्फितता—अस्तिकायके प्रकरणमें अस्ति शब्दका यहां अर्थ कहा जा रहा है। वैसे तो कुछ भी बात बोलो उसमें द्वैत भावकी बद्धता पड़ी हुई है। कोई कहे कि तुम्हारी यह बात बिल्कुल सच है तो क्या इसका अर्थ यह नहीं निकला कि यह बात झूठ नहीं है? दोनों भाव बँधे हुए हैं। कोई यह हठ करे, नहीं जी हमारी बात सच ही है, तो क्या यह बात नहीं है कि हमारी बात झूठ नहीं है? यदि यह न हो तो अर्थ निकल आया कि झूठ है और जब झूठका अर्थ निकल आया तो पहिली बात कहां रहेगी? तो कुछ भी बात बोलते ही उसका विरोधी भाव उसमें पड़ा हुआ है। 'आज मुझे मुनाफा हुआ है' इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि आज मुझे टोटा नहीं रहा। टोटा नहीं रहा, मुनाफा रहा खैर इसमें तो कुछ अन्तर लगा भी सकते हैं। मुनाफे का विरोधी शब्द यदि टोटा है तो यह विधि निषेधका द्वैतभाव गुम्फित है और टोटेका अर्थ दूसरा हो अमुनाफा, इसका अर्थ दूसरा हो तो मुनाफाके मुकाबिले 'अमुनाफा शब्द रखलो। कुछ भी बात बोलो वह अपने प्रतिपक्षी भावसे गुम्फित है।

प्रत्येक निरूपणमें स्याद्वादकी मुद्रा—प्रत्येक वस्तुमें, प्रत्येक कथनमें स्याद्वादकी मुद्रा गुम्फित है। कैसी जगह कोई माल बना तो माल बनाने वाले लोग उसमें अपनी सील लगा देते हैं पर यहां तो यह सारा माल पड़ा है, यह किसी जगह किसी ने बनाया नहीं है। यह अपने अपने स्वरूप से बना है। तो इसमें सील लगाने कौन आयेगा? इसमें सील वहीं वस्तु

http://sahjanandvarnishastra.org/

लगा लेता है और वह शील है स्याद्वाद। प्रत्येक ज्ञान प्रत्येक व्यवहार स्याद्वादकरि गुम्फित है।

हितार्थीकी प्राथमिक और अन्तिम अनेकान्तता—इस स्याद्वादका निकटवर्ती शब्द है अनेकांत। स्याद्वाद है वाचक और अनेकांत है वाच्य। स्याद्वादमें तो शब्दोंकी प्रभुता है और अनेकांतमें वस्तुस्वरूपकी प्रभुता है। अनेकांत कहते हैं जिसमें अनेक अंत पाये जायें। अंतका अर्थ है धर्म। सो जब तक व्यवहार मार्गमें अनेकांतका परिज्ञान कर रहे हैं तब तक तो ज्ञाताके उपयोगमें यह अर्थ है कि इसमें अनेक पदार्थ हैं और जब अनेकांत का परिज्ञान करके कुछ अध्यात्ममें उतरता है, निर्विकल्प समाधिके उन्मुख होता है उस समय मानो अनेकांतकी ज्ञाताके उपयोगमें यह व्याख्या बन गयी—'न एकः अपि अंतः यत्र सः अनेकांतः।' जहां एक भी धर्म नहीं है उसे कहते हैं अनेकांत। जहां रंच भी भेद नहीं है, गुणपर्यायकृत भी अन्तर नहीं है, केवल एक ज्ञानस्वरूपका अनुभव है वहां अंतिम फलित स्थिति हो गयी। स्याद्वादसे साध्य है अनेक अंत वाला अनेकांत और उस अनेकांतका साध्य है एक भी अंत न हो ऐसी निर्विकल्प स्थिति। यहां अस्ति शब्दसे पदार्थका स्वरूप कहा गया है कि ये पदार्थ सत् हैं और कायरूपसे सनाथ हैं, इस कारण ये ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं।

पदार्थोंका अस्तित्व—जगत्में समस्त पदार्थ ६ जातियोंमें बंटे हुए हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन समस्त द्रव्योंको विशेष-विशेष लक्षणोंसे पहिचानना यह भी भेदविज्ञानके लिए बड़ा सहायक है। किन्तु उसके साथ ही समस्त द्रव्योंमें पाये जाने वाले साधारण गुणों की दृष्टिसे सबको निरखना, यह भी भेदविज्ञानमें बहुत सहायक परिज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ है। है पर ही तो सारी बात और शृङ्गार चलता है। है तो मानना ही होगा। जीव है, पुद्गल है आदिक और इतना ही नहीं जीव अनन्त हैं सो वे सब अपने आपमें अपना-अपना है लिए हुए हैं। सो किन्तु यह हैपना सर्वपदार्थोंमें अविशेषता लिए हुए है। है की दृष्टि से जीव और पुद्गलमें क्या अन्तर है ?

अस्तित्वके सप्रतिपक्षत्वकी वस्तुत्व द्वारा साध्यता—भैया ! अन्तर पड़ता है असाधारण गुणकी दृष्टिसे। पुद्गल मूर्तिक है, जीव चेतन है, अन्तर पड़ गया पर हैपने की दृष्टिसे क्या अन्तर ? वस्तु है, आप हैं, हम हैं। वस्तु कुछ भी हो लेकिन वह वस्तु है ऐसा एकांत न चलेगा। वस्तु अपने स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है। दृष्टांतमें जैसे इस पुस्तक को उदाहरणमें लें यह पुस्तक है। तो है इतने मात्रसे काम न चलेगा। यह पुस्तक है और यह चौकी, घड़ी, मेज, कुर्सी आदिक अपुस्तक नहीं हैं। यदि ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सप्रतिपक्षताका गुम्फन "है" के साथ न लगा हो तो "है" भी नहीं टिक सकता। यह है तो क्या यह पुस्तक है, यह चौकी है, यह सर्वात्मक है। तो फिर यह यह नहीं रहा तो अस्तित्वके साथ प्रतिपक्षका बना रहना आवश्यक है।

द्रव्यत्व का अर्थक्रियाकारिता में योग—अब वस्तुमें अस्तित्व भी हो और स्वरूपसे रहना, पररूप से न रहना ऐसा वस्तुत्व भी हुआ, इतने मात्र से भी कुछ काम नहीं बन सकता। क्या यह कूटस्थ ध्रुव है? परिणामी नहीं। यदि ध्रुव अस्तित्व हो, परिणामी न हो तो कुछ काम ही नहीं हो सकता, चलना फिरना, चहलपहल, बातचीत, संसारमार्ग, मोक्षमार्ग, जन्म लेना, मरना अथवा बना रहना—ये कुछ भी बातें नहीं हो सकती हैं। इस कारण यह भी निरखा जा रहा है कि प्रत्येक पदार्थ में परिणमनशीलता बसी हुई है। इसका ही नाम द्रव्यत्व है। यदि है तो निरन्तर परिणमता रहता है।

अगुरुलघुत्व द्वारा अर्थक्रियाकारिता की व्यवस्था—यह परिणमता है तो परिणमता रहो, ऐसा सीमारहित परिणमन क्या है कि किसी भी रूप परिणम जावे? नहीं, चेतन चेतन रूप ही परिणमेगा, अचेतन अचेतन रूप ही परिणमेगा। प्रत्येक पदार्थ अपने ही गुणोंमें परिणमेगा दूसरे में नहीं। इस मर्म का सूचक है अगुरुलघुत्व गुण। कानून बनाकर लोकको उस पर चलाना एक तो यह बात और एक लोक का परम्परागत प्रचलन देखकर कानून बनाना, इन दो बातोंमें पहिली बात पास नहीं हो सकती, चल नहीं सकती, लेकिन अनेक गलितयों को सुधार कर परम्परासे जैसे सभ्य पुरुषोंमें चलता है उसको देखकर कानून गढ़ना, यह बात चलने लायक बात है।

चरणानुयोग का महत्त्व—चरणानुयोग में भी जो कुछ क्रिया करना बताया है परमार्थतः उसकी भी स्थिति यही है। ज्ञातृत्व की कला की परख बिना चरणानुयोग बनाकर जीवको उस पर चलाना, यह बात नहीं हुई है किन्तु ज्ञानी जीव जो कर्ममल भार से हलके हो जाते हैं उनकी कैसी प्रवृत्तियां चलती हैं, उन प्रचलनों को दृष्टिमें निरखकर चरणानुयोगमें गुम्फन हुआ है और इसी कारण चरणानुयोगकी विधियां जो निरूपित हैं उनके सहारे चूंकि ये निर्दोष कथन हैं सो ऐसा प्रयत्न करके भव्यलोक में प्रायः चलना है। पहिले तो कुछ प्रवृति बना बनाकर चरित्र में चलना होता है, फिर जो यथार्थ बात है वह चरित्र में स्वयं फिट हो जाती है।

वस्तुगत तत्त्व का निरूपण—यह वस्तुस्वरूप भी कानून बनाकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गढ़ा नहीं गया, किन्तु परमार्थमें जो बात पायी जाती है उसको समझनेके लिए उन्हें वचनोंमें बद्ध किया गया है। समस्त पदार्थ हैं और अपने स्वरूप से हैं पररूपसे नहीं हैं—इन दो बातोंकी मिलती है। यों दो मित्र युगल हैं ये पदार्थ हैं व स्वरूपसे हैं पररूपसे नहीं, यह है प्रथम युगल और ये पदार्थ परिणमते हैं और अपने में ही परिणमते यह है दूसरे में नहीं परिणमते हैं, यह है द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्व दो मित्रों की बात। ये चार साधारण गुण प्रत्येक पदार्थमें पाये जाते हैं।

पदार्थमें प्रदेशवत्त्व—भैया ! इतने पर भी अभी व्यवहारमें उपयोगमें बात पूर्णतया घर नहीं कर पायी। छितरा-बितरा परिज्ञान रहा, बँधा हुआ नहीं हो सका। तो अब प्रदेशवत्व गुणके द्वारसे यह जानो कि ये समस्त गुण और परिणमन जहां होते हैं वे द्रव्य प्रदेशवान् हैं, केवल गप्प बात नहीं है, किन्तु है कोई पदार्थ प्रदेशवान् जहां यह साधारण और असाधारण शक्तियोंका काम चल रहा है ?

पदार्थमें प्रमेयत्व—सब कुछ है और ज्ञानमें न हो ऐसा भी नहीं है, सब प्रमेय है। न प्रमेय होता तो उनके सम्बन्धमें बात ही क्या चलती और ज्ञानका स्वरूप ऐसा है कि वह निर्दोष हो, निरावरण हो तो वह जानेगा। कितना जानेगा ? यदि इसकी सीमा बना दी जाय तो उसका कारण क्या ? ज्ञानने इतना ही क्यों जाना, इससे आगे क्यों नहीं जाना ? या तो कुछ न जाने या सब जाने। बीचकी बात ज्ञानमें नहीं फबती। कुछ न जाने ज्ञान यह तो स्वरूप नहीं है। अपन समझ रहे हैं, सबके ज्ञानका स्वभाव जानना है, और सीमा रखकर जाने, यह युक्तिमें नहीं बैठती क्यों कि यह ज्ञान दौड़-दौड़कर वस्तुके पास जा-जाकर नहीं जानता। यदि इस प्रकार जानने का स्वरूप हो तो थोड़ा कहना भी जँचता कि जहां तक ज्ञान दौड़ेगा वहां तक जान जायेगा पर यह ज्ञान राजा अपने ही प्रदेशमें ठहरा हुआ अपनी कलासे सहज स्वभावको जाने जाता है। जो कुछ है वह जाना जाता है। तो यों सर्वपदार्थोंमें प्रमेयता अवश्य आ ही पड़ी।

साधारण और असाधारण गुणोंकी अविनाभाविता—इस प्रकार इन ६ साधारण गुणोंके साथ सदा प्रवर्तमान ये पदार्थ अपनेमें स्वतंत्र-स्वतंत्र परिणमन करते चले जा रहे हैं। साधारण गुणको अपने ज्ञानमें स्थान न दें तो असाधारण गुणसे ज्ञान और व्यवहारकी गाड़ी नहीं चल सकती और असाधारण गुणको अपने उपयोगमें स्थान न दें तो केवल साधारण गुणोंकी गाड़ी नहीं चल सकती। इस कारण यह सदा महासत् और आवांतर सत् ऐसे प्रतिपक्षपने को लिए हुए ही हैं।

साधारण व असाधारण गुणोंकी अविनाभाविताका विवरण—पदार्थमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधारण गुण न हो तो असाधारण गुण क्या करेगा ? आत्मामें ज्ञानगुण है ? हां है, और साधारण गुण माने नहीं तो, न परिणमन होगा, न सत्ता रहेगी, न कोई आधार जँचेगा, फिर तो उन्मत्त कल्पना हो जायेगी। यदि साधारण गुण ही माने गए और असाधारण स्वरूप कुछ न तका तो द्रव्यत्वसे बना क्या ? द्रव्यत्वका निर्णय हुआ क्या ? तो साधारण और असाधारण गुणोंकी परस्पर सम्बद्धता होती है और हैं ये प्रतिपक्षी भाव, ऐसी ही सामान्य सत्ता और आवांतर सत्ता इसका एक पदार्थमें सम्मिलन है। साधारण गुणोंका प्रतिनिधि है महासत्ता और असाधारण गुणोंकी प्रतिनिधि है आवांतर सत्ता। ऐसे यथार्थ स्वरूप सहित पदार्थोंका परिज्ञान करना हित पंथमें गमन करनेके लिए आवश्यक है।

षड्द्रव्यरत्नमाला—यह ६ द्रव्योंकी रत्नमाला भव्य जीवोंके कंठमें आभरणके लिए शोभाके लिए हो जाती है। ज्ञानीकी शोभा ज्ञानसे है, और ज्ञानका रूप बनता है इन समस्त विश्वके पदार्थोंके जाननेसे तो ये सब पदार्थ इस ज्ञानकी शोभाके लिए हैं। पदार्थ-सम्बन्धी यह सामान्य विवरण करके अब यहां यह बतला रहे हैं कि कौनसे द्रव्यमें कितने प्रदेश हैं ?

> संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
> धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु ॥३५॥
> लोयायासे ताव इदरस्स अणंतयं हवे देहो।
> कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा ॥३६॥

परिज्ञानका प्रयोजन मोहनिवृत्ति—जिन पदार्थोंसे हमें मोह तोड़ना है, अलग होना है उन पदार्थोंका परिज्ञान होना भी तो आवश्यक है। जिसमें मोह फँसा है उन पदार्थोंको हम यथार्थ न जान सकें तो मोह हटेगा कैसे ? ये धन वैभव मकान ये सब अचेतन पुद्गल स्कंध हैं। समानजातीय द्रव्य पर्यायें हैं। बहुतसे अणु मिल करके यह मायारूप रख रहे हैं, ये बिखर जायेंगे। भले ही थोड़ासा इतना अन्तर आ जाय कि बादल जरा जल्दी बिखर जाते हैं और यहांके ये पदार्थ कुछ देरमें बिखरते हैं। पर बिखरने की प्रकृति ये सब बनाए हुए हैं।

पदार्थोंकी क्षणभंगुरता—पुराणोंमें कथन आता है, कि कोई राजा छत पर बैठा हुआ आसमानमें मंडराते हुए बादलोंके सौन्दर्यको देख रहा था, इतनेमें एक जगह बादलोंकी बड़ी उत्तम मंदिरकी जैसी शिखर दीखी। वे बादल इस रूप हो गए थे कि मानों मंदिरकी शिखर बन गयी हो। वह दृश्य उस राजाको बड़ा सुहावना लगा। सोचा कि मैं इसका चित्र बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लूँ। वह राजा चित्र बनानेकी कला जानता था। सो नीचे कागज पेंसिल लेनेके लिए राजा चला गया। जब कागज पेंसिल लेकर राजा आया तो देखा कि सारे बादल छितर बितर हो गए हैं। उसको देखते ही उसे वैराग्य आया। जैसे ये बादल अभी मंदिर और शिखरके रूपमें थे, थोड़ी ही देर में ये सब बिखर गए, यों ही यह शरीर मिला है, यह समागम मिला है, थोड़ी देरको अपने आकार प्रकारोंके रूपमें ये प्राप्त हैं। कुछ समय बाद ये सब बिखर जायेंगे।

अतीत घटनासे भावी घटनाके अंदाजकी सुगमता—वे बाबा दादा जिनका बड़ा प्यार था हम आपके प्रति, आज वे कहां सामने हैं? अब व्यवहारसे ऐसा जाना जाता है कि पिताको पुत्र पर जितनी प्रीति हो सकती है उस से कहीं अधिक प्रीति बाबाकी पोते पर होती है। कैसे जाने? पहिले तो एक सरकारी निर्णय देखो, बाबाकी जायदाद पर नातीका अधिकार रहता है उस पर बापका अधिकार नहीं रहता। बाप अपनी जायदादका कुछ भी गड़बड़ कर सकता है मगर बाबाकी जायदाद पर बाप क्या गड़बड़ कर सकता है? करेगा तो सरकारमें बाप पर नालिश की जा सकती है। बाबाकी जायदाद पर नातीके अधिकारका कानून बना हुआ है। पुराणोंमें प्रायः नातीका नाम वह रखा जाता था जो बाबाका नाम था। जैसे मानों कोई सत्यंधर है और उसका पुत्र जीवन्धर है तो जीवन्धरका पुत्र सत्यंधर नाम पायेगा। फिर मोहकी बात देखो बाबाको नाती पर मोह ज्यादा होता होगा, इसका हमें कुछ परिज्ञान नहीं है, आप लोग ही बता देंगे तो समझ जायेंगे। तो ऐसी ही कई बातोंसे जाना जाता है कि बाबाको नाती पोतों पर प्रीति पुत्रोंसे भी अधिक होती है। तो वे बाबा रहे कहां जिनका अपने पर ऐसा विलक्षण प्यार बना था। उससे ही अंदाज कर लो, अपना भी ऐसा ही हाल होगा।

परमें आत्मीयताकी बुद्धि उन्मत्तचेष्टा—भैया! जो कुछ भी समागम प्राप्त है वह सब बादलोंकी तरह उतनी जल्दी न सही, कुछ देर लगे सब बिखर जायेंगे। तो ये दृश्यमान स्कंध, द्रव्य पर्यायें समानजातीय द्रव्य पर्यायें हैं। जब ये अनेक द्रव्योंसे मिलकर मायारूप रख रहे हैं तो जो मिले हैं वे विघट जायेंगे। यहां कुछ भी मोह किए जाने के योग्य नहीं है ये चेतन पदार्थ मनुष्य, घोड़े, हाथी, परिजन कुटुम्ब ये सब एक एक जीव हैं और अपनी योग्यतानुसार अपने कर्मोंके अनुसार अपनी सृष्टि करते चले जा रहे हैं। इनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे चलते फिरते लोगोंको कोई पागल अपना मान लें और उनके उपयोगमें दुःखी होता फिरे, इसी तरह एक गतिसे दूसरे गति को चलते फिरने वाले इन कुटुम्बी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जनों को कोई अपना मान ले तो उनके उपयोगपर, उनके मनके प्रतिकूल होने पर दुःखी होगा।

ज्ञानी व मोही की वृत्ति में अन्तराशय का एक दृष्टान्त—जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप है उस पर कायम रहने वाला उपयोग क्लेश नहीं पा सकता है। हम सही बात पर कायम नहीं रहते हैं। इतना ही अच्छा है कि दृष्टि तो बनी है कि उस पर कायम रहना चाहिये और मनमें भाव होता है, पर ईमानदारीसे यह बात यदि सत्य है कि हमारी दृष्टि जगी तो है कि हम वस्तुके ऐसे स्वतंत्र स्वरूपके परिज्ञान पर कायम रहें। यदि इतनी दृष्टि भी जगी तो उसे वर्तमान समागममें मोहका क्लेश नहीं रह सकता है। काम तो एक दूकानदार भी करता है और एक सर्विस करने वाला भी करता है पर मोह सर्विस करने वाले को नहीं है। अपनी ड्यूटीका अथवा नियत काम कर लिया, छुट्टी पायी, मोह नहीं रहा, पर दूकानदारीके कार्यमें प्रायः मोह बना रहता है। सो रहे हैं, अधनींदमें भी दूकानकी बात चक्कर काट रही है। ऐसे सर्विस करने वालेके चित्तमें चक्कर नहीं काटती है। यह बात कह रहे हैं एक दृष्टांतके लिए ज्ञानी और मोहीकी वृत्तिके परिक्षणकी बात।

ज्ञानी के परिणमनके प्रति उपेक्षा—यदि वस्तुस्वरूप पर हमारी दृष्टि कायम होने को है तो अन्यपदार्थका विकल्प चिन्तन चिन्ता रूपमें न रहेगा उसमें ऐसा साहस जगेगा कि कोई जीव, कोई पदार्थ यों परिणमा तो भला, यों परिणमा तो भला, अन्तरमें आकुलता न मचायेगा। इन ६ द्रव्योंका स्वरूप जाननेका फल यह मिलता है कि इसकी अपेक्षा जगती है, मोह हटता है, आकुलता दूर होती है। उन ही ६ द्रव्योंके सम्बन्धमें प्रदेशत्वता के रूपमें यहां यह बताया जा रहा है कि किस पदार्थके कितने प्रदेश होते हैं?

प्रदेशमुखेनवस्तुका व्यवाहारिक विशद बोध—इन द्रव्योंमें कितने प्रदेश होते हैं यह कथन कर रहे हैं। प्रदेश किसे कहते हैं? पहिले यह समझ लीजिये तो यह समझमें विशेष आयेगा कि यह पदार्थ इतने प्रदेशवान् है तो इसका यह मतलब है शुद्ध पुद्गल परमाणुके द्वारा जितने आकाशका स्थल रोका जा सकता है उसका नाम प्रदेश है? प्रदेश परमाणुके बराबर है और परमाणु एक प्रदेशके बराबर है। इस तरह पुद्गल द्रव्यमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं।

पुद्गलद्रव्यकी प्रदेशवत्ताके सम्बन्धमें पारमार्थिक व औपचारिक निर्णय—पुद्गल द्रव्यमें वस्तुतः तो एक ही प्रदेश है क्योंकि पुद्गल एक परमाणु का ही नाम है, किन्तु परमाणु परस्परमें मिलकर ऐसा बंधनबद्ध हो जाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि वह सजातीय अनेकद्रव्य पर्यायात्मक हो जाता है। तब ऐसे छोटे स्कंध हैं कि कोई संख्यात प्रदेश वाले हैं, कोई स्कंध असंख्यात प्रदेश वाले हैं और कोई अनन्त प्रदेश वाले हैं। संख्यात दो से शुरू होता है, गिनती एकसे शुरू नहीं होती है। वह तो एक है, गिनती शुरू होती है २ से। तो जघन्य संख्यात २ का नाम है और उत्कृष्ट संख्यात अनगिनते की तरह है अर्थात् जघन्य असंख्यातमें एक कम कर दिया जाय तो उत्कृष्ट संख्यात हो जाता है। असंख्यात भी नाना प्रकारके होते हैं और अनन्त भी कई प्रकारके होते हैं।

स्कन्धोंकी विभिन्न प्रदेशिता—किसी भी स्कन्धरूप पुद्गलद्रव्यमें उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश नहीं होते हैं फिर भी अनुत्कृष्ट अनन्त प्रदेश होते ही हैं। दिखनेमें जितने पुद्गल आते हैं वे अनन्तप्रदेशी पुद्गल हैं. संख्यात प्रदेशी और असंख्यातप्रदेशी भी। पुद्गल दिखनेमें नहीं आते। अब जान लीजिए कि सबसे छोटा स्कंध जो आंखों दिख सकता है उसमें अनन्त परमाणु समाये हैं। एक परमाणु कितना छोटा होता होगा ? यह व्यवहार पर्यायमें नहीं बताया जा सकता है। एक युक्तिसे ही समझा जायेगा। पुद्गलद्रव्य परमार्थतः एकप्रदेशी है और उपचारतः कोई संख्यातप्रदेशी है, कोई असंख्यातप्रदेशी है और कोई अनन्तप्रदेशी है।

आकाशका औपचारिक भेद व प्रदेशवत्त्व—एक जीव, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये असंख्यातप्रदेशी होते हैं। आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी होता है, पर उस आकाशके प्रदेशमें दो विभाग कर लिए जाते हैं। जितने आकाश में समस्त द्रव्य रहते हैं उतनेका नाम है लोकाकाश। और उससे परे समस्त आकाश अलोकाकाश कहलाता है। जहां आकाश ही आकाश है अन्य कोई द्रव्य नहीं है उसे लोकाकाश कहते हैं। अलोकाकाशके तो अनन्त प्रदेश हैं और लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं। वास्तवमें ये दो भेद हैं नहीं, आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, पर इतने बड़े विस्तार वाले आकाशमें जो कि एक अखण्ड है उसमें द्रव्यके रहने और न रहनेकी अपेक्षासे भेद किया गया है। कोई कहे कि आकाश भी अनन्त मान लो। एक-एक प्रदेशपर एक-एक आकाश है। सो आकाश यों अनन्त नहीं माना जा सकता है क्योंकि आकाशका कुछ भी एक परिणमन है वह अनन्त प्रदेशोंमें वहीका वही एक परिणमन होता है।

एक पदार्थका परिमाण—द्रव्य एक उतना कहलाता है कि जो एक परिणमन जितनेमें पूरेमें होना हो पड़े और जिससे बाहर परिणमन कदाचित् न हो, उतनेको एक कहा करते हैं। इस परिभाषाके अनुसार जीवमें निरखलो—एक जीव उतना है कि एक परिणमन जितनेमें होता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और जिससे बाहर कभी नहीं होता है। जैसे ज्ञान परिणमा तो यह न होगा कि आधे भागमें ज्ञान परिणम जाय और आधे भागमें न परिणमे। वही ज्ञान परिणमन जो एक प्रदेशमें है वही ज्ञान परिणमन सर्वप्रदेशोंमें है। यदि गुणपरिणमन पदार्थोंमें ऐसे विभागसे रहे तो वह एक पदार्थ नहीं है, अनेक पदार्थ हैं और अनुभवसे भी यह बात विदित होती है कि जीवमें जो भी एक परिणमन है, ज्ञानका हो या कोई क्रोधादिक विकार परिणमन हो वह सर्वत्र आत्मप्रदेशोंमें होता है।

वेदनाकी सर्वप्रदेशिता—कभी ऐसा मालूम देता है कि हाथमें फोड़ा हुआ तो जहां फोड़ा होता है वहां ही वेदनाका दुःख है, किन्तु बात ऐसी है नहीं। दुःख सर्वत्र प्रदेशोंमें है किन्तु वह दुःख जिस अवयवका निमित्त पाकर हुआ है यह उपयोग उसपर लगता है। यह तो बात है ही कि उस फोड़ेका निमित्त पाकर दुःख हुआ, सो उस फोड़ेका निमित्त न रहता तो इस जीवको दुःख न रहता। तो अब वह वेदनाका आश्रय वहां मिला। तो जैसा वहां परिणमन हुआ उसका आश्रय पाकर वेदनाकी उत्पत्ति होती है, एतावन्मात्र सम्बन्ध है, पर वेदना नामक जो संक्लेश परिणमन है वह संक्लेश परिणमन आत्ममें सर्व प्रदेशोंमें होता है।

ज्ञानकी सर्वप्रदेशिता—कभी ऐसा लगने लगता है कि ज्ञान मस्तकमें पैदा होता है किन्तु ऐसा नहीं है। ज्ञान सर्वत्र आत्मप्रदेशोंमें उत्पन्न होता है किन्तु हमारे इस क्षायोपशमिक ज्ञानकी उत्पत्ति जैसा कि हमारा बाह्य स्थान है, जैसा इन्द्रिय स्थान है, मन स्थान है ऐसा ही विशेष अंग स्थान है, इस कारण दृष्टि वहां जाती है और वहां उपयोग अपना केन्द्र बना लेता है किन्तु वस्तुतः ज्ञानका परिणमन सर्वत्र आत्मप्रदेशोंमें होता है। पदार्थ अपनी सर्वशक्तियोंमें तन्मय है तब उसका सद्भाव सर्वत्र है उस पदार्थमें और जब जीव परिणमन होता है वह भी सर्वत्र है। इस परिभाषा के अनुसार जो एक-एक जीव हैं, वे सब संचित होकर अनन्त हैं।

परमाणमें एक परिणमन—पुद्गलमें ऐसा एक परमाणु परमाणु है। किसी काठमें चौकीमें किसी भी खूँटमें अग्नि लग जाय तो वह एक ओर से जल रहा है, बाकी नहीं जल रहा है। ये दृश्यमान पुद्गल यदि एक होते तो उनका जलन एक ही समयमें सर्वत्र होता। एक ही समयमें वही परिणमन सर्वत्र हो, ऐसी बात किसी पुद्गलमें रहेगी तो वह परमाणु है। इस कारण परमाणु वास्तविक पुद्गल द्रव्य है और स्कंध अनेकद्रव्य पर्याय है।

पदार्थोंके प्रदेशित्व विवरणका उपसंहार—आकाश वस्तुतः एक है, अखण्ड है। उसमें परकी अपेक्षा लेकर दो भेद किए गए हैं—लोकाकाश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अलोकाकाश। लोकाकाशमें धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य सदा विस्तार में भी एक प्रमाण वाले हैं। जितना बड़ा लोकाकाश फैला हुआ है उतना ही बड़ा यह धर्मद्रव्य फैला है और उतना ही बड़ा अधर्मद्रव्य फैला है, किन्तु एक जीव द्रव्य असंख्यातप्रदेशी होकर भी विस्तारमें लोकाकाशके बराबर केवल एक समयमें केवलीसमुद्घातके लोकपूरण अवस्थामें होता है और कभी भी नहीं होता है। तो इस प्रकार धर्मद्रव्य एक ही है, अधर्म-द्रव्य एकही है तथा एक जीव, इसमें असंख्यात प्रदेश होते हैं। बाकी जितने असीम अलोकाकाश हैं उनके अनन्त प्रदेश हैं। यह तो हुआ ५ अस्ति-कायोंका वर्णन। अब एक द्रव्य रह गया काल, उसका वर्णन सुनिये। काल-द्रव्य एकप्रदेशी है और इसी कारण उसे अस्तिकाय नहीं कह सकते हैं किन्तु द्रव्यरूप अवश्य है अर्थात् है और परिणमता रहता है। द्रव्यत्वके नाते जो भी बात चाहिए वह सब कालद्रव्यमें है पर अस्तिकायपना नहीं है। एक एकप्रदेशी कालाणु एक-एक लोकाकाशके प्रदेश पर अवस्थित है।

पदार्थोंके परिज्ञानसे श्रृङ्गार व आत्महित शिक्षा—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी प्रधानतासे यदि अणुवोंको सोचा जाय तो द्रव्याणु तो परमाणु है, क्षेत्राणु आकाशका एक प्रदेश है, कालाणु कालद्रव्य है और भावाणु जीवद्रव्य है। यहां प्रधानतासे और मर्मको समझनेके लिए ऐसा कहा जा रहा है। यह ६ द्रव्योंका समस्त विवरण श्रृङ्गारके लिए भी है और परमार्थ शिक्षाके लिए भी है। लोकश्रृङ्गार क्या है कि इन ६ द्रव्योंके विषयमें विविध ज्ञान हो और वह कंठस्थ हो और उसे हम बोल सकें, बता सकें तो यह ६ द्रव्योंके द्वारसे पुरुषका श्रृङ्गार बना है और परमार्थ शिक्षण क्या है कि हम समस्त द्रव्योंके सम्बन्धमें यह जान जायें कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं, अपने आपमें परिपूर्ण हैं, अधूरा कोई नहीं है। प्रत्येक परिणमते रहते हैं। ऐसा स्वतंत्र स्वरूप निरखकर हम समस्त परसे विरक्त हों और ज्ञाना-नन्द रसमें मग्नता पायें, यह है सर्वद्रव्योंके परिज्ञानसे प्राप्त होने वाली शिक्षा।

व्यवहारपूर्वक निश्चयप्रतिबोध—इस विवरणके परिज्ञानमें वर्तमान पुरुष व्यवहारमार्गको जानता है और व्यवहारमार्ग जानकर फिर शुद्ध मार्गका प्रतिबोध पाता है। ज्ञानी पुरुषके उस धर्ममार्गके प्रचारके प्रति भी बड़ा धैर्य है। किस पदवीमें किस पुरुषका किस विधिसे अध्ययन और उपदेश होना चाहिए, यह ज्ञानीकी दृष्टिसे ओझल नहीं है। एक निश्चय मार्गसे हमने जान लिया और सभी जीवोंको एक उस निश्चयमार्गसे ही प्रतिबोधा जाय, सिखाया जाय तो कोई यदि यह प्रश्न करदे उस व्यक्तिसे कि क्या आप भी प्रारम्भसे इस ही निश्चयस्वरूपसे प्रतिबोधको प्राप्त हुए हैं? उत्तर क्या देगा? बच्चे थे, मां बापके साथ दर्शनका कौतूहल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रखते थे। बालक बनकर विद्याध्ययन किया और कितने-कितने [illegible]में समागमसे लाभ लिया और सर्व प्रकार व्यवहारकी बातोंमें कुशल बने अपनी शक्ति अनुसार और फिर इस निश्चयमर्मको भी जाने। तो जिस चीजका विधान हुआ करता है जिस पद्धतिसे पद्धतिका प्रायः प्रयोग हो तो उसमें सफलता होती है, पर व्यवहार मार्ग जाने, सर्व प्रकार पर्याय और व्यवहारका विवरण समझे, वहां निश्चयका मर्म भर पाये तो यह हमारा उद्बोधन हमें सफल होगा।

परिज्ञानका प्रयोजन यथार्थ लगाव व अलगावकी वृत्ति—यह समस्त विवरण एक ज्ञानकी स्वच्छताके लिए है। जितना विशद बोध होगा उतना ही जिससे हमें हटना है उसका हटाव उत्तम होगा और अपने आपमें लगाव होगा। परसे लगाव और अपनेसे अलगाव कुछ वस्तुगत नहीं है किन्तु इस जीवने बाह्य पदार्थोंसे तो मोहवश लगाव लगाया है और अपने आपकी ओरसे अलगाव बना हुआ है। यहां भी कुछ परसे लगाव नहीं है और अपनेसे अलग नहीं है, पर उपयोगमें तो वह परसे लगा है और अपनेसे अलगाव है, जुदा है। जब ज्ञानप्रकाश होता है तब परसे तो अलगाव हो जाता है और अपने आपमें लगाव हो जाता है। कितना बहुत छोटासा कार्य है मूलमें कि जिस कार्यके विस्तारमें संसार और मोक्ष जैसा महान् अन्तर हो जाता है।

मुक्तिका उपक्रम—मोक्षमें हम कैसे लगें, धर्मपथ हमारा कैसे बने ? इसका उपाय बहुत थोड़े शब्दोंमें कहा जाय अथवा कोई कहे कि मुझे बहुतसी बातें न बतावो। मुक्तिके लिए तो मुझे केवल एक छोटीसी बात बता दो, जिसका आश्रय लेकर हम संकटोंसे मुक्ति पानेमें शीघ्र सफल हो सकें तो वह उपाय एक बहुत छोटासा है यथा कि 'जितपिट्ठा तितदिट्ठा जित दिट्ठा तित पिट्ठा।' इतना ही उपाय है। जिस ओर हमारी पीठ इस समय बनी है उधरको देखना है और जिस तरफ देख रहे हैं उस तरफ पीठ करना है। उपयोग दृष्टिकी बात कही जा रही है। हम अपने आत्मस्वरूपकी ओर तो पीठ किए हुए हैं तो उस ओर तो हमें देखना है और बाह्यपदार्थोंकी ओर दृष्टि किए हुए हैं सो उस ओर पीठ करना है। ये बाह्य पदार्थ खूब भले-भले दिख रहे हैं, ये मेरे हैं ये दूसरेके हैं सो इन बाह्य पदार्थोंकी ओर पीठ करना है और अपने आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि करना है।

परिचितकी उपासना—जैसे आप लोग यहां बैठे हों। इनमें से जिन्होंने श्रावणबेलगोलमें बाहुबलिकी प्रतिमाके दर्शन किये हैं उनसे कहा जाय कि उसको निरख लो तो एक क्षणमें ही वे निरख लेंगे क्योंकि उनकी

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखी हुई वह चीज है। इसी तरह ज्ञानानन्दस्वरूप जिसके परिचयमें आया है, जिसने सहज आनन्दका अनुभव किया है उसे जब कभी मनमें आये तो इस ज्ञानानन्द रसमें मग्न होनेमें विलम्ब नहीं लगता। कितना ही बाह्य झंझटोंमें आप पड़े हों, एकदम ज्ञानानन्द स्वरूपमें आपका उपयोग लग जाता है और ज्ञानानन्द रसका अनुभव होने लगता है।

आनन्दवृत्तिका उद्यम—जैसे मोटरगाड़ी आगे निःशंक चले सो वे पेट्रोल आदि डालकर पहिलेसे ही ठीक कर लेते हैं ताकि फिर आनन्दसे बढ़ाए चलें। ऐसे ही आनन्दकी गाढ़ी बढ़ानेके लिए, चलानेके लिए हम अपने इस ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि करने रूप कुछ तैयारी बना लें, फिर तो उसके स्मरणके प्रसादसे भी शेष समय हमारे अनाकुलतामें चल सकते हैं। यों ६ द्रव्योंका वर्णन उनसे अपनेको हटानेके लिए और अपनेमें अपनेको लगाने के लिए किया जा रहा है।

अजीवाधिकारमें ५ प्रकारके जीवोंका न अतिसंक्षेपसे, न अति विस्तारसे वर्णन किया गया। अब उस वर्णनका इस अंतिम गाथामें उपसंहार किया जा रहा है। उपसंहार कहते हैं जो कुछ कहा गया है उसमें रही सही बातको अथवा उसका किसी संक्षिप्त तत्त्वको कह देना, सो उपसंहार है। कथनको संकोच करके मूल मुद्देको दर्शाते हुए वर्णन करने को उपसंहार कहते हैं। अजीव द्रव्यके व्याख्यानके उपसंहारमें अब यह गाथा अवतरित होती है।

पुग्गलदव्वं मोत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥३७॥

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेषके द्रव्य मूर्तिपनासे रहित हैं। जीव चैतन्यस्वभाव वाला है और शेष द्रव्य चैतन्य गुणसे रहित है।

लक्षणसे जातिका प्रतिबोध—पदार्थ तो अनन्त होते हैं, परंतु पदार्थ की जातियां बनाकर यहां मूलभूत द्रव्यकी ६ जातियां बतायी गयी हैं। जाति उसे कहते हैं कि जिसमें विवक्षित सभी पदार्थ आ जाएँ और अविवक्षित कोई पदार्थ न आए। जीवद्रव्य जैसा स्वलक्षणात्मक है उस स्वलक्षणकी दृष्टिमें जितने भी जीव हैं सबका ग्रहण हो जाता है और जीवसे अतिरिक्त किसी भी द्रव्यका ग्रहण नहीं होता। इस ही को पहिचान कहते हैं, लक्षण कहते हैं। जहां अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव—ये तीनों दोष नहीं रहें ऐसे लक्षणों को पदार्थका शुद्ध लक्षण कहा करते हैं।

लक्षणका अव्याप्तिदोषसे लक्षणाभासपना—अव्याप्ति दोषका अर्थ है 'न व्याप्ति इति अव्याप्ति।' जो न व्यापे, न रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं अर्थात् जो समस्त लक्ष्यमें न रहे उसका नाम अव्याप्ति है। इस ही को

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस भाषामें कह सकते हैं कि जो लक्ष्यके एक देशमें रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं, किन्तु शब्दोंके अनुसार अर्थ यह नहीं है। यह तो फलितार्थ है, शब्दार्थ यह है कि जो समस्त लक्ष्यमें न रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं। जैसे पशुकी कोई पहचान पूछे कि बतावो पशुका लक्षण क्या है और कोई उत्तर दे दे कि पशुका लक्षण सींग है। तो एकदम सीधा सुननेमें तो लगेगा कि ठीक ही तो कहा है, पशुवोंके ही तो सींग होते हैं, किन्तु सींगरूप लक्षण समस्त पशुवोंमें नहीं पाया जाता है। इससे पशुवोंकी पहिचान सींग बताना युक्त नहीं है। पहिचान वह होनी चाहिए जो समस्त लक्ष्यमें रहे और अलक्ष्य एकमें न रहे उसे कहते हैं लक्षण। वैसे पशुका लक्षण क्या हो सकता है, इस बाबत कभी ध्यान ही नहीं दिया, पर यह सम्भव है कि जिसके चार पैर होते हैं सो पशु है। यदि यह बात सही है कि पशुके सिवाय और किसीके चार पैर नहीं होते और सब पशुवोंके चार पैर होते हैं तो यह लक्षण सही बन जायेगा। जीवका लक्षण क्या है ? कोई कहे कि जीव का लक्षण है राग, खाना पीना, चलना, बैठना ये ही जीवके लक्षण हैं। तो यह लक्षण निर्दोष नहीं है क्योंकि रागादिरूप लक्षण सब जीवोमें नहीं पाया जाता है। शुद्ध आत्मावोंमें राग कहां है ? तो अव्याप्ति दोष नहीं हो और अतिव्याप्ति दोष नहीं हो, साथ ही असम्भव दोष नहीं हो तो वही लक्षण सही सही माना जाता है और उससे ही फिर जातियां बनती हैं। जातियां लक्षणोंसे ही प्रकट हुआ करती हैं।

अतिव्याप्ति दोषसे लक्षणका लक्षणाभासपना—कोई पूछे कि गायका लक्षण क्या है ? और उत्तर दिया जाय यह कि गायका लक्षण सींग है तो थोड़ा शब्द सुननेमें तो ठीकसा जँच जाता है। ठीक ही तो कह रहे हैं कि गायके सींग होते हैं। पर यह बात नहीं कही जा रही है। गायका लक्षण सींग बताया जा रहा है कि जहां-जहां सींग मिले उस उसको गाय समझना तो यह लक्षण सही तो नहीं है क्योंकि सींग लक्ष्यरूप गायके अलावा अन्य पशुवोंमें भी रहा करता है। भैंस, बकरी, बैल, भेड़, बारहसिंहा आदि अनेक पशुवोंके सींग रहा करते हैं। तो यह अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है। अतिव्याप्ति कहते किसे हैं ? जो अति मायने अधिक व्याप्ति मायने रहे। जो लक्ष्यके अलावा अलक्ष्यमें भी रहे उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। तो गायका सींगरूप लक्षण है क्या ? नहीं क्योंकि गायके अतिरिक्त अन्य पशुवोंमें भी सींग पाये जाते हैं। ऐसा यह अतिव्याप्ति दोष है। जीवके सम्बन्धमें पूछा जाय कि जीवका लक्षण क्या है ? और कोई कहे कि जीव का लक्षण है अमूर्तिकता। रूप, रस, गंध, स्पर्शका न होना। तो जरा जल्दी सुननेमें अनेक लोगोंको ऐसा लगेगा कि यह ठीक तो कह रहे हैं। जीवमें रूप, रस, गंध, स्पर्श कहां होते हैं, पर यह नहीं कहा जा रहा है,

http://sahjanandvarnishastra.org/

लक्षण बांधा जा रहा है। जो-जो अमूर्त हो वह वह जीव है--ऐसा बंधन किया जा रहा है। जीव अमूर्त है, यह तो ठीक है, पर जीवका लक्षण अमूर्त नहीं हो सकता क्योंकि अमूर्तपना जीवके अतिरिक्त अलक्ष्यमें भी पहुंच गया। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य ये भी अमूर्तिक हैं।

असंभव दोष--कोई कहे कि जीवका लक्षण है भूतचतुष्टयसे जो उत्पन्न हो जाता है यह बिल्कुल ही असम्भव है। जैसे कोई पूछे कि मनुष्य का लक्षण क्या है और कोई उत्तर दे कि मनुष्यका लक्षण सींग है। तो क्या किसी मनुष्यके आपने सींग देखा है? यह लक्षण तो बिल्कुल ही असम्भव है. जहां तीनों प्रकारके दोष नहीं होते हैं, ऐसे लक्षणसे जाति बना करती है।

पदार्थका निर्दोष लक्षण स्वभाव--जीवकी जाति कैसे पहिचानी जाय? उसकी पहिचान है जो उसका स्वभाव है। जहां-जहां चेतन है वे सब जीव हैं। पुद्गलका लक्षण बताया है रूप, रस, गंध स्पर्शमयता। यह लक्षण पुद्गलको छोड़कर अन्य द्रव्योंमें नहीं पाया जाता है। परमाणु हो या स्कंध हो सर्वत्र पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्शमें पाये जाते हैं। चाहे कहीं मालूम पड़े अथवा न मालूम पड़े या कहीं चारोंमें से एक दो मालूम पड़े, शेष न मालूम पड़े। यह मालूम पड़नेकी बात है किन्तु समस्त पुद्गलों में ये चारों गुण नियमसे हुआ करते हैं। धर्मद्रव्यकी जाति है गति-हेतुत्व, अधर्मका लक्षण है स्थितिहेतुत्व, आकाशका लक्षण है अवगाहन-हेतुत्व और कालद्रव्यका लक्षण है परिणमनहेतुत्व। यों सर्व पदार्थोंकी जातियां ये ६ होती हैं। उनमेंसे जीव तो एक है और अजीव ५ हैं।

वस्तुस्वरूपकी अनुसारिता--यह अधिकार है अजीव द्रव्यका। उक्त अजीवमें से मूलपदार्थोंमें सबसे प्रथम बताया गया है पुद्गल। जो सुगम जाना जा सके उसको वर्णनमें पहिले लिया करते हैं। इन अजीव पदार्थोंमें से पुद्गल अति सुगमतया जाना जाता है। उस पुद्गलमें मूर्तपना है। रूप, रस, गंध स्पर्शमयता है और पुद्गलको छोड़कर शेष पदार्थ सब मूर्त हैं। कानून बनाकर वस्तु नहीं बताई जा रही है किन्तु जैसी वस्तु है उस का ज्ञान करनेके लिए उसके अनुरूप वर्णन किया जा रहा है। बहुतसे व्यवहार ऐसे हैं कि परम्परागत व्यवहारको मानकर चला जाता है तो उसमें असफलता नहीं मिलती है। धर्मके मार्गमें, सभ्यताके पथमें बहुतसे पुरुषोंके द्वारा छन-छनकर यह स्पष्ट रूप मिल रहा है। तो वस्तुवोंमें जो स्वरूप पाया जाता है उस स्वरूपको दृष्टिमें लेनेके लिए उसके अनुरूप वर्णन होना यह तो है सफलताका साधन और हम सब कुछ स्वरूप गढ़ लें, बना लें और उसके अनुसार बाहरमें व्यवस्था करें, प्रबंध करें स्वरूप देखें तो वह सब प्रायः असफल होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञेयोंमें जीव व पुद्गलकी प्रमुखता—इन समस्त पदार्थोंमें पुद्गल द्रव्य तो मूर्तिक है और शेषके सर्व द्रव्य अमूर्त हैं। तो मूर्त और अमूर्तके नाते से एक ओर तो मूर्त पुद्गल बैठा है और दूसरी ओर सब द्रव्य आ गए, इस तरह जब चेतनत्व और अचेतनत्वका मुकाबला करें तो चेतनत्व मिलेगा जीवमें और शेष द्रव्योंमें मिलेगा अचेतनत्व। जीव चेतन है, जाननहार, देखनहार है और अजीव कोई भी न जानता है न देखता है। उस अशुद्धता और शुद्धताके मुकाबलेमें विचार किया जाय तो अशुद्धता केवल जीव और पुद्गलमें मिलेगी। पुद्गलमें तो स्वजातीय बंधन की अपेक्षा अशुद्धता है और जीवमें विजातीय बंधनकी अपेक्षा अशुद्धता है। पुद्गल, पुद्गलके संयोगमें अशुद्ध हो जाता है और जीव पुद्गलके संयोग में अशुद्ध हो जाता है। भैया! जीव और अजीवका स्पर्श, सम्बन्ध कहीं नहीं होता है, फिर भी मोही जीव प्रायः जीव और अजीवको एकमें मिलानेके प्रयत्नमें रहता है।

मोहनिद्रामें छोटे बड़ेकी कल्पनाका स्वप्न—यह मोही जीव अज्ञानमें हठ किए रहता है और इसी व्यामोहके फलमें न कुछ जरा-जरासी बातों में विवाद और कलह हो जाते हैं। संसारमें सुख है कहां? जो बड़ा है वह हुकुम दे देकर दुखी होता है और जो छोटा है वह हुकुम मान-मानकर दुखी होता है। यहां यह सोचा जाय कि छोटे लोग तो दुखी रहते हैं और बड़े लोग सुखी रहा करते हैं तो ऐसा कुछ नहीं है। जैसे छोटे आदमी दुखी हैं, बल्कि किन्हीं अपेक्षावोंसे छोटेकी अपेक्षा बड़ा दुखी अधिक है। छोटेकी लालसा तृष्णा उनकी कल्पनाकी सीमा थोड़ी है। इतनेकी सिद्धि हो गई तो मौजसे गाते फिरते अपना समय बिताते हैं और कहो बड़ेके, चूंकि तृष्णा अधिक है सो उस तृष्णाके कारण रात दिन चैन नहीं मिलती है।

लोकवैभवसे छोटे बड़ेका अनिर्णय—भैया! बताओ जरा बड़ा कहेंगे किसे? धनमें बड़ा होना है कोई ऐसा मानें तो आप ही लोग पंचायत करके कमेटी करके हमको फैसला दे दो कि इतने रुपये हों तो उसे बड़ा कहते हैं या धनी कहते हैं। जो फैसला करे वह बिलकुल सही करे। कोई विचार कर सकता हो तो खूब विचार करके बता दे कि बड़ा उसे कहते हैं। किसीके पास करोड़ रुपयेका वैभव हो तो क्या उसे बड़ा कहेंगे? अरे उसके सामने किसी अरबपतिका वैभव रख दो तो वह करोड़पति उसके सामने छोटा हो जायेगा। सभी अपनी कल्पनासे बड़े बने हैं, पर यहां कोई बड़ा नहीं है।

संघर्षसे बड़ोंकी सृष्टि— यहां एक बात समझो यह है कि कोई बड़

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहुत बड़ी विपत्तियां सहनेके बादमें बन सकता है। एक बड़ा नाम इसका है जो उड़दकी दालसे बनता है। वह भी बड़ा कहलाता है। उस बड़े की कहानी सुनलो। पहिले तो दाल पानीमें भिगोते हैं, १० घंटे तकके लिए फुला देते हैं। बादमें उसको रगड़ते हैं हाथसे ताकि इसके छिलके निकल जायें। अभी दो ही कष्ट आए। फिर सिलबट्टेसे पीस-पीस कर चूर कर देते हैं और कंजूस हों तो थोड़ी कुशल भी रहे, थोड़ा पानी डालकर कढ़ी बना लिया। क्योंकि उसमें घी कम लगता है। उसके बाद उसे खूब फेंटा, चार बातें अभी हुई हैं, इसके बाद फिर उसकी शकल बिगाड़ कर गोल गोल कर लिया, यह हुई ५ वीं बात, फिर उसे कड़ाहीमें डालकर खूब सेंका। इसके बाद भी मन नहीं मानता, सो लोहेकी पतली सींकसे उसका पेट छेदकर देखते हैं कि कच्चा तो नहीं रह गया है। इतनी बातें होनेके बाद उसका नाम लोग बड़ा रखते हैं। तो अब समझलो कि बड़ा बननेके लिए कितने कष्ट आते हैं और बड़ा बननेके बाद भी कष्ट छूटते नहीं हैं किन्तु बढ़ते ही जाते हैं। क्योंकि कल्पनाओंकी और व्यवस्थावोंकी कुछ हद नहीं है लोकमें। तो काहेका बड़ा और काहेका छोटा ? दुनियामें ये सब एक समान हैं।

ज्ञानीका परिज्ञान व अन्तः प्रसाद—जिसने अपना स्वरूप संभाला, वस्तु की स्वतंत्रताका भान किया, जो कि शांति और संतोषका कारण है। ममता न रही तो अब क्लेश किस बातका ? सारा क्लेश तो ममताका है घरमें भी रहे तो भी कर्तव्य तो यह गृहस्थ ज्ञानी निभायेगा सेवा शुश्रूषा उपचार करेगा, पर आकुलित न होगा। हाय, अब क्या किया जाय ? हमें कुछ सूझता नहीं, ऐसी आकुलता न मचायेगा। वह तो जानता है कि हमें सब सूझता है कि कितनी विकट बीमारी है। या तो अच्छा हो जायेगा या मर जायेगा। अच्छा हो जायेगा तो ठीक है और मर जायेगा तो संसारका यह तो नियम ही है। हम तो परिपूर्ण ज्योंके त्यों ही हैं। वहां कुछ घटता नहीं है। उसे यथार्थ परिज्ञान है क्योंकि मोह नहीं रहा। सबसे बड़ी कमाई यही है कि मोह न रहे क्योंकि कमाई के फलमें चाहते हैं आप आनन्द किन्तु बाह्यवस्तुवोंके संचयमें आनन्द कहीं न मिल पायेगा और मोह नहीं रहा तो लो आनन्द हो गया।

परिज्ञानका फल निर्मोहता—भैया ! मोह न रहे इसके ही लिए इन सब अजीवोंका वर्णन इस अधिकारमें किया गया है। ये अजीव ऐसे हैं, इनका यह लक्षण है, मुझसे अत्यन्त पृथक् हैं। इनके परिणमनसे मेरा परिणमन नहीं, मेरे परिणमनसे इनका परिणमन नहीं। रंच भी सम्बन्ध नहीं है। यह मोही जीव स्वयं अपनी ओरसे परवस्तुवोंका लक्ष्य करके इस अपने [illegible]

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर रहा है। अशुद्धता केवल जीव और पुद्गलमें होती है। धर्मादिक चार द्रव्योंमें तो सदा शुद्धि ही रहती है। शुद्ध हो या अशुद्ध हो सर्वत्र द्रव्योंमें स्वरूपकी स्वतन्त्रता है।

स्वतन्त्रताकी उपासना—ऐसे बहुत प्रकारके वर्णनमें पद पद पर स्वतंत्रताका उद्घोष किया गया है। जो पुरुष ऐसे यथार्थ स्वतंत्र स्वरूपको कंठमें धारण करेगा उसका लोकमें बड़ा शृङ्गार होगा और जो जीव वस्तु के इस स्वतंत्र स्वरूपको हृदयमें धारण करेगा उसकी बुद्धि बहुत पैनी बनेगी और जिसकी प्रज्ञा पैनी बनेगी वह इस समयसारको शीघ्र प्राप्त करेगा, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इन सब वर्णनोंसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि मैं अन्य सर्वपदार्थोंसे, अतत्त्वोंसे निवृत्त होकर चिदानन्दमय आत्मस्वरूपमें उपयोगी बनूँ।

❀ नियमसार प्रवचन द्वितीय भाग समाप्त ❀

मुद्रक—जैनसाहित्य प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

Version 1